



# ★ श्री हित चौरासी ★

( स्फुट वाणो घोर सेवक वाणो सहित )

सम्पादक

श्री ललिताचरण गोस्वामी

५५

भूमिका सेवक

डा० विजयन्त्र स्नातक

रीडर हिन्दी विभाग दिल्ली

विश्व विद्यालय दिल्ली

वितरक—

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

नई सड़क, दिल्ली ।

प्रकाराक

वेणु प्रकाशन

बद यात्रा मोहस्ता  
पुन्यायन ।

प्रथम संस्करण १०००

मूल्य ३ ५० न० पै०

अप्रैल, १९६३

मुद्रक

लोकसाहित्य प्रेस

मधुप ।

## प्रकाशक का निवेदन !



वेद-प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह तीसरा ग्रन्थ है। महाप्रभु श्री हित हरिबोध गोस्वामी रचित 'हित बीजसौ' एवं 'लुट्ट बाणी' पनेक बार प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु अभी तक इनका कोई सुसम्पादित संस्करण नहीं छपा था। आन्तरिक श्री ललिताचरण श्री मास्वामी ने बड़े परिश्रम पूर्वक इस ग्रन्थ को सम्पन्न किया है और एक स्पष्ट शीर्षक तैयार करवा है। विद्वत् डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने इस ग्रन्थ की सुविधा तैयार कर ग्रन्थ की उपयोगिता में वृद्धि की है। एतन्मै हम उक्त दोनों महानुभावों के धन्यवाद व्यक्त हैं।

केन्द्रीय प्रकाशन की स्थापना सन् १९२६ में हुई थी। यह ठीक उस संस्था की राष्ट्रीयस्तरीय सम्प्रदाय के प्रश्नों के प्रकाशन के सिंघो बार आर्थिक सहायता मिली है। श्री चम्पकलाल कुनीवाल द्वारा साह भोगीलाल बोहरालाल अहमदाबाद वालों की बिबला बांकारी की घोर से एक हजार रुपये प्राप्त हुए हैं घोर अमृतसर वाले श्री यशराजकुमारजी खेमका ने साढ़े बारहसौ रुपये प्रदान किये हैं जिनके लिये हम उनके अतीव आभारी हैं।

हमें विश्वास है कि यदि जनभाषा-बलि साहित्य के अनुयायियों द्वारा इसी प्रकार का आर्थिक घोर आर्थिक सहयोग हर्षे मिलता रहा तो उक्त साहित्य से सम्बन्धित प्रामाणिक आलोचनात्मक प्रश्नों के समाधान की पूर्ति बहुत कुछ घणों में हो सकती है।

—प्रकाशक

## भूमिका

भारतवर्ष के इतिहास में जिस काल को मध्ययुग की सजा दी गई है वह केवल राजनीतिक क्रान्तियों के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है परन्तु धार्मिक एवं साहित्यिक क्रान्ति का भी यह उत्कृष्ट युग है। इस युग के धार्मिक क्षेत्र में भक्ति का जो प्रबल प्रयत्न समस्त भारत में व्यक्त हुआ यह इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। धर्म और भक्ति की पावन विचारधाराओं को साहित्यिक माध्यम से व्यक्त किया गया और जनता से ही उस युग में धर्म और साहित्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध हो गया। धर्म और साहित्य को प्रबल तत्त्व न रह कर एक दूसरे में इतना अन्तर्भूत हो गये कि उनका पार्थक्य सुप्त-सा हो गया। उत्तर भारत में लोक भक्तियों के पराक्रम पर धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करने का उपक्रम हुआ तो दक्षिण भारत में संस्कृत को स्वीकार किया गया। भक्ति के क्षेत्र में निर्गुण और सगुण रूप से ईश्वरोपासना की विविध पद्धतियाँ प्रकृत शक्ति में अहंकार और इश्वर के अन्तरीक्ष का सीन्धुय राम और कृष्ण के दिव्य स्वरूप में सामने आया। इसी समय ब्रजभूमि को नवजीवन प्राप्त हुआ। सोलहवीं शताब्दी से पूर्व ब्रजभूमि का जो रूप था वह परिवर्तित होने लगा और शनैः शनैः वृन्दावन धाम का महत्व भगवद्भक्तों की यात्री से प्रकट होकर जन साधारण के लिए प्रसन्न और उपास्य बन गया। भौतिक वृन्दावन दिव्य वृन्दावन बना और मायना चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर पार्थिव और अपार्थिव के भेद को मर्यादा विमृत कर बैठी। महापुरुषों की अनीदित यात्री ने उस युग

वैश्व प्रकाशन की स्थापना सन् १९२६ में हुई थी। यह एक  
 इस संस्था को राष्ट्रीयस्तरीय सम्प्रदाय के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये  
 दो बार आर्थिक सहायता मिली है। श्री चम्पकलाल कुलीभान बँकर  
 द्वारा साह्य बोधीभान मोहनलाल अहमदाबाद वालों की बिबवा बाई  
 कानी श्री धीर से एक हजार रुपये प्राप्त हुए हैं धीर अमृतसर वाले  
 श्री अन्नकुमारजी सेमका ने साढ़े बारहसौ रुपये प्रदान किये हैं जिसके  
 लिये हम उनके आभार प्रार्थी हैं।

हमें विश्वास है कि यदि जनसाधारण-प्रति साहित्य के अनुसंधानों  
 द्वारा इसी प्रकार का शैक्षिक धीर आर्थिक सहयोग हमें मिलता रहा  
 तो उक्त साहित्य के सम्बन्धित प्रामाणिक आलोचनात्मक ग्रन्थों के  
 प्रकाश की पूर्ति बहुत कुछ संघी में हो सकेगी।

—प्रकाशक

# भूमिका

मागतवर्ष के इतिहास में जिस काल को मध्ययुग की कहा  
गई है वह केवल दार्शनिक क्रांतियों के कारण ही प्रसिद्ध  
है परन्तु धार्मिक एवं साहित्यिक क्रान्ति का भी वह उल्लेख्य  
है। उस युग के धार्मिक क्षेत्र में मक्ति का जो प्रवल प्रवाह  
मूलतः भारत में व्यक्त हुआ वह इतिहास की एक महत्वपूर्ण  
घटना है। धर्म और मक्ति की पावन विचारधाराओं को साहित्य  
के माध्यम से व्यक्त किया गया और जन-वास ही उस युग में  
धर्म और साहित्य का अविच्छिन्न संयोग हो गया। धर्म और  
साहित्य दो श्रेष्ठ तत्व न रह कर एक दूसरे में इतने अन्तर्मुख  
हो गये कि उनका पारस्परिक लुप्त-सा हो गया। उत्तर भारत में  
लोक-मताओं के घरातल पर धार्मिक भावनों को व्यक्त करने  
का उपक्रम हुआ तो दक्षिण भारत में संस्कृत को स्वीकार किया  
गया। मक्ति के क्षेत्र में निगुण और सगुण रूप से ईश्वरोपासना  
की विविध पद्धतियाँ प्रकाश में आईं और ईश्वर के अत्यन्तरी  
रूप का सौन्दर्य राम और कृष्ण के दिव्य स्वरूप में सामने  
आया। इसी समय ब्रजभूमि को नया जीवन प्राप्त हुआ। सोलहवीं  
शताब्दी से पूर्ण ब्रजभूमि का जो रूप था वह परिवर्तित होने लगा  
और शनैः शनैः पुन्दायन धाम का महत्व भगवद्भक्तों की यात्री  
से प्रकट होकर जन साधारण के लिए मंदिर और उपास्य बन  
गया। भौतिक पुन्दायन दिव्य पुन्दायन बना और भावना धर्मो  
स्वरूप पर पहुँच कर पार्थिव और अपार्थिव के भेद को सर्वथा  
निम्न कर बैठी। महापुरुषों की अत्यधिक धारणा ने उस युग



को महिमा मञ्जित कर दानुत' अपन प्रद्वर तज' भी व्यक्तित्व का ही परिचय दिया है।

हमी युग में प्रजमंडल में भी गोस्वामी हितहरियंशजी का पदार्पण हुआ। भी हितहरियंशजी के पूर्वज उत्तर प्रदेश के महा रनपुर जिले के दूधकन्द कस्बे के निवासी थे। धर्मिक भावनाओं से वैराग्य मत्तायलम्बी होने पर भी उनकी मातृभाषा ब्रज नहीं थी। ब्रजभाषा उनकी अर्जित भषा है किन्तु जिस प्रेरणा ने उन्हें ब्रजभूमि में ज्ञान को वाप्य किया था उसी ने उन्हें ब्रजभाषा को र्भ कर करन को भी विवश किया। ब्रजभूमि में ज्ञान क ब द गोस्वामी हित हरियंशजी ने पुन्दावन ग्राम के चार सिद्ध कलि स्थलों का प्राकट्य किया और उन्हें भक्तों के लिए सुलभ बनाया। इन चार सिद्ध स्थलों में मानमरोवर, मयाकुज, राममंडल और धर्मावट आज भी पुन्दावन में प्रसिद्ध हैं। इन कलि-स्थलों के प्राकट्य में प्रतीत होता है कि भी हित महाप्रभु को ब्रजभूमि की महिमा का आभास ही नहीं करन उसकी गाप्य गीरद-गरिमा का मूल रूप भी निश्चय प्रेरणा से विवित होनाया था।

गोपाभी हित हरियंशजी ने अपनी धार्मिक भावनाओं को प्रकट करन के लिए किसी सिद्धांत-संध की रचना नहीं की। कदाचित् शुद्ध सिद्धांत-यत्न बनफो पभी अभीष्ट नहीं रहा। पारंपरिक चार नीरम तथे विस्ता, जिस दशानिक विस्तन पदा जाता है, रम-भक्ति के माधुर्य का विघातक होता है अतः रम बर्शन में आस्था रखने वाले प्रेमीजनों का उमक प्रति आम्ह न होना स्वाभाविक ही है। ब्रह्म, ज्ञान, उरग, माया, काल आदि के सम्बन्ध में उन्होंने दशानिक धरातल पर जिज्ञासा व्यक्त नहीं की क्योंकि वे जानते थे कि इन गुरु-गहन तथों का मर्थ मन्म स्यत्प करणायधि निरिच्छत नहीं है और न अन्तः पास तक इनके स्वरूप

में ऐक्यताय सम्भय हो सकेगा । 'नैषो मुनिर्यस्यमत न मित्रम  
 के धर्म की समझने वाले मनीषी आचार्य हरियशजी ने इस  
 प्रबंध से तटस्थ रहकर भक्ति के मूल तत्त्व प्रेम को अपनी धारणी  
 का प्रतिपाद्य बनाया ।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि विशाल काय प्रयोगों  
 की रचना के अभाव में भी जीवन और जगत् के सधुगतम  
 सम्बन्धों का सांगोपांग विवेचन श्री द्वित महाप्रभु ने अपनी  
 सीमित धारणी में इतने मोहक रूप में प्रस्तुत किया जितने मोहक  
 एवं भग्नरूप में उनसे पहले या उनके बाद भी कोई महापुरुष  
 नहीं कर सका । यदि भिन्न के विभिन्न मत-मतान्तर्गत के प्रवर्तकों  
 के साहित्य पर इच्छित किया जाय तो 'द्वित सांगमी' के समान  
 लघुकाय प्रथम शायद ही किसी धर्म-संस्थापक या प्रयत्नक का  
 होगा । वेद, उपनिषद्, पुराण, दर्शन, स्मृति आदि की परस्पर  
 एक ओर है तो दूसरी ओर धर्म संस्थापकों की कृतियाँ बाइबिल,  
 कुरान, जिन्दाबस्ता आदि हैं । मध्य युगीन में ता में फकीर, शूद्र,  
 जनक, तुलसी, मूर आदि की रचनाएँ भी मिराजाकार ही हैं ।  
 प्रेममार्ग को स्वीकार करने वाले निर्गुण मुफ्ती मन्तों ने भी प्रबंध  
 कान्य का व्यापक स्वरूप प्रदर्श कर पद्मायत जैसे विशालकाय  
 काव्यों की सृष्टि की है । कहने का सात्पर्य यह है कि 'द्वित  
 सांगमी' अपने कलेवर की लघु-सीमा में रहकर भी असीम प्रेम  
 भावनाओं को प्रकट करने वाली अपनी तरह की एक मात्र रचना  
 है । साम्प्रदायिक धरातल पर धर्म-बंध का सम्मान प्राप्त करने पर  
 भी यह काव्य, भक्ति, प्रेम और मनपरशु की भूमि पर अवस्थित  
 साहित्यिक ग्रंथ है ।

'द्वित सांगमी' जैसा कि मैंने ऊपर की पंक्तियों में लिखा  
 है, भी द्वित शिबिरा रचित सांगमी पदों का समूह है ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का यह आधार स्तम्भ है। राधावल्लभीय भक्ति उदय को इष्टय गम करने के लिए इस ग्रंथ को मूलाधार माना जाता है। श्रीरासी मुच्छर गेय पदों में श्री द्वित हरियंशजी ने मूलतः अपनी मान्यताओं को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है, यह लिखने में मुझे स कोष होता है क्योंकि श्रीरासी के पद व्यक्तिनिष्ठ साम्यता पर आधारित न होकर राधाकृष्ण भक्ति के मूल प्रेरक सत्त्वों पर प्रस्तुत हुए हैं। स्रष्टा के एक होने पर भी ये भाव और भावनाओं की अनेकता में समष्टि को मोहने वाले हैं। अतः मैं उन्हें व्यक्तिनिष्ठ पदान्तिष्ठ नहीं मानता। इन पदों को साम्प्रदायिक महत्त्व मुझे स्वीकार्य है किन्तु साम्प्रदायिक परिधि के बहर मानव मन को भाव-विमोह करने की अद्भुत क्षमता देखकर मैं उन्हें सम्प्रदाय विरोध की सीमा तक आशङ्कित करने का पक्षपाती नहीं हूँ। द्वित श्रीरासी के पद शृंगार, रति, मत्तम और मुरत का वर्णन करने के साथ ही होली, बमन्त, शरद और पायस के शुभोत्सव वर्णनों से भी परिपूर्ण है। सम्प्रदायिक दृष्टि में जो धर्मीकरण किया गया है वह द्वित श्रीरासी की स्वयं परता का सीमित बनाने वाला है अतः मैं उस अन्तिम धर्मीकरण नहीं मान सकता।

श्री द्वित हरियंश गोपनीजी ने अपने सम्प्रदाय की स्थापना करने समय परम्परागत सत्त्वों के परिव्याग के प्रति आशङ्कित प्रकट करके अपनी विचार-व्यवृत्ति की मौलिकता बढ़ा निमित्त, फल का माग मानने लगी थी। प्रम-मिथ्यात्व की स्वयं पना में तन्मुखी भाव का आधार बनते समय इनके मन में यही भाव था कि प्रम-उदय में इष्टय के प्रति मय बुद्ध समर्पित कर उन्मा के मुख का प्रमुख बनना चाहिए। स्वमुख भिन्नित तन्मुखित भाव को गुह्यता आर गमायता पर विचार करने में विहित होता

है कि यह भाव समपण की परफाष्टा है । लौकिक प्रेम में, प्रेम करने वाला प्रेमी अपनी वृत्तियों के परिताप के लिए ही प्रेम के ससर में प्रविष्ट होता है । आत्म विसर्जन की सर्वात्कृष्ट भाषना एक यह उठ नहीं पाता किन्तु राष यत्नभीय प्रेम मार्ग में 'जोई जोई प्यारो करै, सोई मोदि भायै ।' की विशिष्ट प्रेम-परिपाटी स्वीर की गई है । द्विजजी की दृष्टि में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही उपास्य है और प्रेम मार्ग ही एक मात्र मार्ग है । इस प्रेम धर्म का आधार है अनन्यता । स्फुटयाणी के एक पत्र में श्री हरिवंश जी ने कहा है—“रखो कोऊ काहु मन्दि दिय । मेरे प्राणन'ब श्री श्यामा सपथ कर्यै कृणु छियै ।” द्विजजी के शिष्यों ने भी अपनी यात्रा में इस भाष को बहुत ऊँचे स्तर से मुम्बरित किया है ।

प्रेम को भक्ति का मेरुदंड बन कर गो प भी द्विजहरिवंश जी ने इतना व्यापक और विराट बना दिया है कि उरुकी परिधि में माधन-परक, विहार परक और व्ययहार परक प्रेम का समाहार हो जाता है । जागतिक प्रेम और काम य मना जन्म प्रेम से राषा निपयक प्रेम का व्यापकन करते हुए द्विज श्रीरासी में जो म र्ग मुम्भया गया है वह मर्षय, नृसन और विहृषियों से रक्षित है । नित्य विहार की स्थिति में प्रेम ही कर्म्य होता है और यही नित्य विहार के अनुष्य को स युक्त करक विहार स्थिति सम्पदन करने में सहायक होता है । प्रेम की प्रत्येक दशा, प्रमनन्द की म दफता, प्रमानुभूति के क्षण के समस्त कथिक धर्म मानसिक आन्दोलन द्विज श्रीरामी में प्रथित कर दिये गये हैं ।

‘द्विज श्रीरामी’ रसभक्ति प्रतिपदन करने वाली मरम य खी है जो अपन मन्तव्य को स्थापित करने में शस्त्र का महागु नहीं लेता । शस्त्र-सम्मत धदन मर्यादा का फटोर भूमि पर अपथित हा है, माधन कृष्णमता उमदी अनिन यता है,

'नियमों का शासन उसे मीमांसक बनाए रहता है। माघन नियम सूर्याश और कर्मकाण्ड की कठोरता के कारण भक्त का हृदय मर्म और स्निग्ध नहीं रहता। अतः भीहितजी ने अपने मार्ग में विधि निषेध की शास्त्रीय परम्पराओं को स्थान बना उचित नहीं समझा। नाभाजी ने अपने भक्तमाल में त्रितयी की इस विरोधता को बड़े स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है—“विधि निषेध नहीं राम कनक उत्कट श्रमभारी।’ प्रियादामजी ने अपनी टीका में इस भाव को और अधिक स्पष्ट करत हुए लिखा है—“विधि को निषेध देने वाले प्राण प्यारे द्विये—।’ यन्तु भी ठीक महाप्रभु विधि और निषेध की शास्त्र मयादा से सर्वथा मुक्त थे। उनके प्राणनाथ उनके हृदय में बसत थे और उनके परितोष के लिए जो क्रिया करत थे, कति क्रीड़ा उह अभिप्रेत लगती उसी का ध्यान करत थे अपना परम प्रिय कल्याण समझत थे।

भीति हरियशजी ने आराध्या राधा का बलून 'द्विज औरामी' के पत्रों में आदर्शिय विमोह बशा में किया है। हृदय के जिम रूपत उल्लास को वे राधा ध्यान के प्रसंग में जुग पाते हैं, यह उनकी पाण्डीका मधम अधिक उत्कर्मित धर जाता है। यों तो प्रम मंडल के सभी वैष्णव सम्प्रदायों में राधा की उपासना पर बल दिया गया है किन्तु द्विज जी के मत में 'रमोपैम' की पराधधि भी पूरण म आग बड़कर राधा तक स्वीकार की गई है। राधा एक सामान्य गोपी न होकर राम की अधिष्ठातृ रूप प्रकृति हैं। उनका अंग अंग म उज्ज्वल प्रसरत का तथा लयलय कृपा पूर्ण पागमन्य मात का अम्बुधि प्रयाहित होता रहता है। राधा माधुर्य साम्राज्य की एक मात्र भूमे और राम की एक मात्र मीमा हैं। इनके पदनर की छटा का एक दिग्ग म धनीभूत प्रेम-गमुन का अत्य धारा प्रयाहित होती रहती है। उनकी चरण कृपा म

मुक्ति मुख्य होजाती है और सामाजिक समाज पैमय ऐश्वर्य प्राकृत से होजाते हैं। जो भगवान भीकृष्ण गिय और ब्रह्मा द्वारा नमस्त्य है ये भी राधा के एक इशारे पर यनपूल चुनते हैं। 'जाति बिर बि चमापति नाये, तापै तू यनपूल बिन य। जो रम नेत्रि नेत्रि भुक्ति भाक्यो, ताको तें अघर सुधारसभादयो।' हितचौरमी में राधा का रूप, सौन्दर्य, शक्ति, शील और गुण का वर्णन जिस दिव्य चगतल पर हुआ है उसे पढ़कर मन आनन्द के अलावा किक राग म दूबने उत्तराने लगता है।

महाप्रभु भी हितजी ने अपने पत्रों में 'नित्य विहार' का बड़े समारोह के साथ वर्णन किया है। नित्य विहार का स्वरूप भी हित जी स पहले स्पष्ट नहीं था। जिन सम्प्रदायों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है उनमें इसकी विशाल व्याख्या नहीं मिलती। यद्युक्त हितजी ने ही अपने 'हित चौरमी' में इस नित्य विहार को मुख्यस्थिति रूप से अतिष्ठ किया है। नित्य विहार के साथ रासलीला का स्वरूप भी हित चौरमी के पत्रों में उद्दिष्ट होता है। रामक्रीड़ा का स्वरूप मैट्टा विष्णु रूप में पत्रों में नहीं है किन्तु रासलीला का महत्त्व समझ जा सकता है।

विषय यद्युक्त प्रतिपाद्य की दृष्टि से हित चौरमी में न केवल प्रतिपाद्य प्रमुख विषयों या मने ऊपर की पंक्तियों में सबेदों से हित चौरमी को हृदय गम नहीं किया जा सकता। उनके प्रत्येक पद पर प्रत्येक प्रत्येक विचार करने से ही इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का महत्त्व समझ जा सकता है। प्रायः मौखिक की दृष्टि में विचार करने पर और बड़ा विस्मय सामने आता है और ग्रन्थभाषा के पाठक को विपन्न करता है कि पद हित चौरमी की

काम्य यत्न पर अनन्त इच्छाओंमें विचार करे। किन्तु स्मरण रख कि द्दित श्रीरासी मक्ति रम से आण्णायित मुक्तक पशों का सफलन है। श्री द्दित हरिवंशजी ने इन पशों की रचना काठ्यशास्त्र की पशुमोटी सामने रखकर मन्त्री की भी किन्तु इस का उपेक्षा न करके छद्मोंमें मानुष्य-मन्त्रित काठ्य रचकर मक्ति मयका का मागर तर गावित किया था। काम्य की अन्धा रस है, हरिवंशजी की याणी का मूला धार गम ही है। काम्यरम सदृश्यों के विषय को असक्त परता हुआ आत्मिक आनन्द की सृष्टि करता है तो हरिवंशजी की याणी का रस भी गमिक मन्त्रों को प्रेम विदूषण करके आनन्द विभोर बना देता है।

काम्यानन्द ब्रह्मानन्द महोदर है, हरिवंशजी की याणी का आनन्द आशात ब्रह्मानन्द वा ही रूप है। काम्य के आसक्त्यन नायक-नायिका रति, हस, शोक आदि रसायी भावों को उद्विग्न करने में सहायक होते हैं तो हरिवंशजी के काम्य के आसक्त्यन गवाह्य रति को जागृत पर विषय को शायत शक्ति प्रदान करते हैं। मक्ति रम को स्वीकार करने वाले मन्त्री मन्त्रों के मत में मक्ति काम्य का अर्थ उद्देश्य दिव्य प्रेम-मार्ग से गमिक मन्त्रों को भवर्षधन से मुक्त पर एमे आनन्द लोफ में ले जाना है जहाँ सामाजिक भ्रष्टाचार के वर्धन परिहृत हो जाते हैं। भवर्ष के मन में एकान्त कम विस्त रापाठ्य रति का रूपार पाराय र सहान लगता है। उम अग घ और अणार पार पार में बृद्ध पड़ने के बाद सभार-मागर के सुदृष्ट किनार विनीत हो जाते हैं, शश्रीय मर्यादाएँ हट जाती हैं और भवर्ष का मन विगुण आत्म अन्तन्य में लीन होकर तथा प्रम का आनन्द उपलब्ध करने लगता है। 'द्वित श्रीरासी' के पशों के अनुशीलन में इमी कोटि के आनन्द

की सृष्टि भक्त के मन में होती है और मैं समझता हूँ यही द्वैत श्रीराम की सबसे बड़ी सार्थकता है।

द्वैत श्रीराम की अभिच्य जना शैली पर भी इस प्रसंग में दो शब्द घटना में आवश्यक समझता हूँ। आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व जब मैंने पहली बार द्वैत श्रीराम के आठ-पाँच पद पढ़े थे तभी से मेरे मनमग्न भाव जगा था कि इन पदों में भाषा की प्राजलता के मायमाध्य, साधस्य और प्रयाह का जैसा स्वच्छ-मुधरा रूप है वैसा ब्रजभाषा के किसी भक्त कवि की धारणा में नहीं है। मुझे यह कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं है कि ऐसा परिमार्जित रूप सुरदास और नन्ददास की भाषा में भी उपलब्ध नहीं होता। फलतः तभी से मैं द्वैतकी की भाषा का प्रशंसक और समर्थक रहा हूँ। श्री हरिवंशजी ब्रजभाषी नहीं थे। उनकी मातृभाषा द्रज न होने पर भी उन्होंने द्रज की प्रकृति को समझ पाया यह उनकी प्रतिभा का प्रमाण है। हाँ, ससृष्ट भाषा के ये पद्वि ही नहीं निसर्ग सिद्ध कवि भी थे। किन्तु उनकी कवि-प्रतिभा का रूप हमें ससृष्ट की अपेक्षा द्विती में ही अधिक मिलता है। द्वैत श्रीराम के पदों को पढ़ते ही भाषा की प्रेपणीयता और भाषा प्राद्विणी सुमता के कारण दर्ययिपय का चित्र मूर्तिमन्त दो नेत्रों के सामने आ खड़ा होता है। ससृष्ट की तन्मम पदावली को द्रजभाषा के सहज प्रवाह में ढालने की क्रिया में हरिवंशजी को अद्भुत सुमता प्राप्त है। शब्द मैत्री, विग्रामरुता, नाद सौन्दर्य, और मगीतामन्त्रा उनकी धारणा के उन्लेख गुण हैं जो भक्त कवियों में उच्चर दृष्टिगत नहीं होते। सवेदन के स्वरूप को मूर्त रूप देकर जो पनायनी अन्तर्नेत्रों के सामने लाने में समर्थ हो वही भाषा परिपूर्णता की फर्माटी पर खरी मानी जाती है—हरिवंशजी की द्वैत श्रीराम



इसका निदर्शन है। द्वितीय शौरासी मं तन्मम और तबुमय दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है और दोनों का प्रमाय भी अलग-अलग देखा जा सकता है। शब्द मैत्री तो हरिवंशजी की पाणी का प्राण है। मसृष्ट और ब्रज के सम्मिलन से मोह्य पाठापरण स्रष्टा करने की फला तो आपको सहज सिद्ध थी। 'कोमल किजलय शयन सुपशला' और 'पिङ्ग म पटिफ विविध निर्मित घर' में तन्मम की छटा तथा 'निज भजन फनक सन जोषन' और 'आलम जुठ इतरात रंग मगे मये निमि जागर मखिन मलिन री में तद्रूप की मनोहारी छटा किसे मुग्ध नहीं करती। द्वितीय शौरासी को संगीतात्मकता तो इसी से सिद्ध है कि गोस्वामी जी ने इन्हे राग यद रूप में लिखा है। प्रत्येक पद किसी न किसी गय राग का अनुसरण करता है। सर्गात और मादिर्य का मणि कौबनयाग इमरा वैशिष्ट्य समझना चाहिए। काव्यागों की फर्माणी पर यदि द्वितीय शौरासी पर अनुशीलन किया जाय तो ध्वनि, लक्षणा व्यञ्जना, अलंकार, रस, रीति, यक्रोपि आदि की विपुल सामग्री इसमें उपलब्ध होगी। अभिव्यंजना कांशाल की दृष्टि से मैं इस काव्य को प्रजभाषा का एक प्रांजल और परिपूर्ण निदर्शन मानता हूँ। भरी मान्यता है कि यदि भाषा और अक्षरगत विधान की फर्माणी पर इस काव्य की परम्परा की जाय तो प्रज भाषा का सुष्ठु-मणि सिद्ध होगा। यगी क अक्षर भी गोस्वामी द्वितीय हरिवंशजी ने मधुमुष ही इस काव्य में शरी की मनमोहक माह्वयनि को शब्द-गच्छ और दग-मल में समाविष्ट कर दिया है। यों ही भक्तजन इन पदों को पढ़ते हैं उनका मामम भाषानु ब्रुत पर विन्यास म गूज करता है।

भी द्वितीय हरिवंशजी ने 'द्वितीय शौरासी' के अतिरिक्त सुष्ठु सुष्ठु पर भी लिखे हैं जिन्हें 'सुष्ठु याली' के नाम से संकलित पर

लिया गया है। स्फुट वाणी की रचना कदाचित् 'द्वितोग' के बाद हुई क्योंकि इसके कई पद मिद्धान्त प्रतिपादन से मम रहते हैं। पदां के अनिश्चित दोहे, मयैया, छप्पय और कु बरि मी हैं, कुल मिला कर इनकी मण्वा २० है। मिद्धान्त प्रतिपा की दृष्टि से स्फुट वाणी का विरोध महत्व है क्योंकि इसकी प्र पादन शैली मीची और सरल है। सामान्य शक्त के समस्त प्र रूप से यस्तु क स्थापना करने में स्फुट वाणी के दोहे और कु लिया बहुत प्रभाव पूर्ण मिद होते हैं।

राघायन्त्रम सम्प्रदाय में द्वित औरामी और स्फुट वा के हार्द को स्पष्ट करने वाली रचना भी रामोदरदास (सेवक की वाणी मानी जाती है। प्राग्भ से ही यह परम्परा चली रही है कि द्वित औरामी और स्फुट वाणी के माय 'सियक वा का प्रकाशन अथर्व किया जाय क्योंकि द्वितमी की वाणी अर्म समझने में मेयकमी की वाणी ही मशयक होती है। परम्परा का निवाह करते हुए प्रस्तुत ग्रंथ में 'मेयक वाणी' भी समयेत रूप से प्रकाशित हुआ है। साम्प्रदायिक भक्ति को मयोग रूप से जानने के इच्छुक जनों को इस प्रकार प तीनों प्र थ सुनम हो सकेंगे। मेयकवाणी मोलक प्रकरणों में प पित हुई है। इन प्रकरणों में सामयिक और शाश्वत दोनों दर्ा से मेयकमी ने विचार किया है।

मेयक जी ने अपने युग की उपेक्षा करके प रचना नहीं है, उनको दृष्टि इतनी व्यापक थी कि तय बोध के लिए। बोध और द्यष्टि बोध को भी ठहोने व्यापक पूर्वक स्वीकार है। मेयक वाणी के माध्यम म अनेक बेसी गुणियाँ मुक्त जो द्वित औरामी के गुण-मर्म में छिपी हुई हैं और माय पाठक की पकड़ म बाहर हैं।

इसका निदर्शन है। द्वितीय चौरासी में तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है और दोनों का प्रमाप भी असंग-असंग देखा जा सकता है। शब्द मैत्री तो हरियराजी की बाणी का प्राण है। संस्कृत और व्रज के सम्मिलन से मोड़क पाठावगण म्रडा करने की कला तो आपको महज मिथ थी। 'फोमल किनालय शयम सुपशल' और 'विद्रुम फटिफ विविध निर्मित घर' में तत्सम की छटा तथा 'निज भजन कनक ठन ओयन' और 'आलस जुत इतराव रँग मगे मय निमि जागर मखिन मखिन गी' में तद्भव की मनोहारी छटा किसे मुग्ध नहीं करती। द्वितीय चौरासी को संगोवात्मकता तो इसी में मिथ है कि गोस्वामी जी ने इसे राग पद रूप में लिखा है। प्रत्येक पद किसी न किसी राग का अनुसरण करता है। संगीत और साहित्य का मणि काँचनयाग इसका वैशिष्ट्य समझना चाहिए। काव्यांगों की कर्मोटी पर यदि द्वितीय चौरासी का अनुशीलन किया जाय तो ध्वनि, लक्षणा, अलंकार, रस, रीति, यक्रोक्ति आदि की विपुल सामग्री इसमें उपलब्ध होगी। अभिव्यजना फोगल की दृष्टि से मैं इस काव्य को व्रजभाषा का एक प्रांजल और परिष्कृत निदर्शन मानता हूँ। मगी मान्यता है कि यदि भाषा और अप्रस्तुत विधान की कर्मोटी पर इस काव्य की परम्परा की जाय तो व्रज भाषा का मुहुट-मणि मिथ होगा। पंगी के रूपसार भी गोरवामी द्वितीय हरियराजी ने सपमुष ही इस काव्य में पंशी की मनमोहक नादभ्यनि का शब्द शब्द और दग-दग में समाधिप कर दिया है। अ्यों ही भक्तजन इस पदों को पदत हैं उनका मानग भाषानु कूल पद विन्यास में गूण उन्ता है।

भी द्वितीय हरियराजी ने 'द्वितीय चौरासी' के अतिरिक्त कुछ गुरु पद भी लिखे हैं जिन्हें 'गुरु पाणी' के नाम से संकलित कर

दिया गया है। स्फुट घाणी की रचना कदाचित् 'द्वित्चौरामी' के बाद हुई क्योंकि इसके फइ पद मिद्धान्त प्रतिपादन से सम्बन्ध रखते हैं। पत्त के अतिरिक्त दोहे, मधैया, छप्पय और कु बलिया भी हैं, कुल मिला कर इनकी संख्या २७ है। मिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि में स्फुट घाणी का विरोध महत्त्व है क्योंकि इसकी प्रतिपादन शैली मीधी और सरल है। मानान्त मरु के समस्त प्रत्यय रूप से यस्तु क स्थापना करने में स्फुट घाणी के दोह और कु बलिया बहुत प्रभाव पूर्ण सिद्ध होते हैं।

राधावन्तम सम्प्रदाय में द्वित् चौरामी और स्फुट घाणी के दाह को स्वप्न करने वालो रचना भी शमोदरदास (मेवकजी) की घाणी मानी जाती है। प्रारम्भ में ही यह परम्परा चली आ रही है कि द्वित् चौरामी और स्फुट घाणी के माध 'मेवक घाणी' का प्रकरण अक्षर्य किया जाय क्योंकि द्वित्जी की घाणी का भर्म समझने में मेवकजी की घाणी ही मशयक होती है। उन्नी परम्परा का निपाद करने हुए प्रस्तुत ग्रंथ में 'मेवक घाणी' का भी समयेत रूप में प्रकाशन हुआ है। साम्प्रदायिक भक्ति तन्त्र को मर्यादा रूप से जानने के इच्छुक जनों को इस प्रकार एकत्र तीनों ग्रंथ सुलभ हो सकेंगे। मेवकघाणी मोल्ल प्रकरणों में पल्ल-विन हुई है। इन प्रकरणों में सामयिक और शाश्वत श्रेणों दृष्टियों में मेवकजी ने विचार किया है।

मेवक जी ने अपने युग की उषेता करके पत्त रचना नहीं की है, उनकी दृष्टि इतनी व्यापक थी कि तत्व बोध के सिद्धि दान बोध और व्यक्ति बोध को भी उन्होंने आपद पूर्वक स्वीकार किया है। मेवक घाणी के माध्यम से अनेक ऐसी गुणियाँ सुलभनी हैं जो द्वित् चौरामी के गुण-भर्म में छिपी हुई हैं और माधायण पाठक की पकड़ में बाहर हैं।

श्री दत्तमहामनु को परम पावन यात्री का प्रचार और प्रसार अद्यावधि सम्प्रदाय तक ही सीमित बना हुआ है। कतिपय साहित्यानुयायियों के अतिरिक्त सामान्य जनताको दित्तचौखम्बी के न तो सिद्धान्त पक्ष का पता है और न साहित्यिक गौरव गरिमा से ही उनका परिचय है। फलतः इस महत्त्वपूर्ण प्रथम उद्घाटन सम घरातल पर नहीं हुआ जिस बरातल पर सुरशाम नन्दशाम आदि अन्य ऋगमापी कवियों की रचनाओं का हुआ है। दित्त चौखम्बी तथा श्रुत वाणो के जो संस्कृत प्रकाशित हुए य इतने आकर्षक और मत्प्रेरक नहीं थे जिनकी और काव्य गमिक पाठकों का ध्यान आकृष्ट होता। आग से दम घप पूर्व मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ था और मैंने अपने अन्य ज्ञान के आधार पर 'दित्त चौखम्बी' को टीका तैयार करने का उपक्रम किया था। आधे स अधिक पन्नों पर टीका लिखने क बाद मुझे लगा कि मैं केवल साहित्यिक दृष्टि से इस पर टीका-टिप्पणी कर रहा हूँ। यन्तुन प्रथम तो भक्ति तत्व का आकृष्ट प्रथम है जिसमें मूर्तरूप से दित्त जी महागज न अनेक तप्य सकलित किये हुए हैं। भक्ति के साध्यायिक रूप के उद्घाटन का न तो मुझे ज्ञान था और न मैं इतने दुरूह क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकारी ही था। अतः मैंने अपनी अस्यक्तता को ममक कर इस कार्य को अपूर्य ही छोड़ दिया। किन्तु मैं निरन्तर इस प्रयत्न में रहा कि जोइ ममर्थ अधिकारी विद्वान इस महान कार्य का भार उठाकर दित्त चौखम्बी को टिप्पणियों सहित प्रकाशन परे।

दुर्ग का विषय है कि गणायन्त्रमीय सम्प्रदाय क आधार्य और श्री दत्त महामनु क यराज श्री गोम्यामी ललितापरणु जी न इस दुरूह कार्य का संकल्प किया और बड़ी योग्यता के साथ पागामीक पन्नेका सम्पादन तथा यथागधान आवश्यक टिप्पणियों

लिखन का न्युत्पन्न कार्य किया। श्री गोस्वामी ललित, चरणजी को मन्त्रित सम्प्रदायों का गंभीर ज्ञान है। टिप्पणियों में उन्होंने जिन स्थलों का उद्धाटन किया है यह साम्प्रदायिक तथा माहित्यिक पृष्ठभूमि के बिना सम्भव नहीं है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर जानता हूँ कि श्री द्वितर्जनी की भाषा में तथा श्री सेयक जी की भाषा में ऐसे अनेक पद और मन्त्र हैं जिनका मर्म परम्पराबोध के बिना सम्भव नहीं है। श्री ललित चरणजी द्वितीय-संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी, बंगला और गुजराती के भी अधिकारी विद्वान् हैं। उनकी प्रतिपादन शैली का आसाम उनके पूर्व प्रकाशित गभीर ग्रन्थ 'भा द्वितर्जनी द्विदश गोस्वामी, माहित्य और सम्प्रदाय' में पाठकों को प्राप्त हो चुका है। उनकी लेखनी से साम्प्रदायिक और माहित्यिक ग्रन्थों का मर्म उद्धाटित हो चकी हमारी कामना है।

मैं इसे अपना परम मौमान्य मानता हूँ कि आचार्य ललित चरणजी गोस्वामी ने मुझे अपने इस सुसम्पादित पथ भ्रष्टिपण्य प्रथकी भूमिका लिखने का अयमर प्रदान किया। मन्त्र तो यह है गोस्वामीजी जैसे विद्वान् ने अपने नाम के साथ मुझे संयुक्त करके उच्चात्मन प्रदान किया है जिसका मैं अधिकारी नहीं हूँ। मैं इसे गुरु कृपा मान कर स्वीकार करता हूँ।

—विजयन्त म्नातक

राधा धरण प्रकाश हृदय प्रति मुहक उपासी ।

कु ज केनि बम्पनी तही की करत गवासी ॥

सर्वेसु महा प्रमाद प्रसिध ताके अपिकासी ।

विधि निवेद्य महि दाम अनस्य उत्कट बतवारी ॥

ध्याम मुक्त पद अनुसरै सोई भने पहिचालि है ।

हरिबग गुमान भजन की रीति मकून कोऊ जानि है ॥

नामाजी भक्त्यास ६

राबिना बम्पज भास प्राजा सो रमासवर्ष

मेवा सो प्रकास थी बिपास पुञ्ज भास बी ।

सोई बिस्तार मुग मार हग रूप पिपी

दियो रसिक कानि जिन गियो पण्ड भास \* की ।

प्रियादागडा टीकाकार भक्त्यास

थी उपिका पर कमल कापुगी गरम रग ।

बिना हरिबधिन को बगत ॥

जामु मुग कमल बानो गु मकरन्द रस ।

धरत मुनि नाहिती प्रति ब्रमान ॥

थी बंशी धनि ।

## ग्रन्थ और ग्रन्थकार

हित बहुरासी क रचयिता थी हित हरिवंश गोस्वामी क पूर्वज देवबद त्रिला सहारनपुर के रहम वाम थे । उनक पिता व्यास मिथ जी उत्कालीन दिल्ली पति सिफदर शर्मा के राज ज्योतिषी थ और ठाट-बाट स रहत थ । एकवार बाग्याह क साथ थ दिल्ली स भागरा जा रह थ । उनको प्राप्त प्रकवा पत्नी वारा रानी उनके साथ थी । प्रसव-काल निकट एकक थ दिल्ली-भागरा राज पर स्मित मद्रुग स छ. मीम त्रिगु 'बाद नामक भ्रम में ठहर गय । वही वसात्र मु० ११ सादकार स० १५५६ का थी हिताशय का जम हुआ ।

श्रीहित हरिवंश गोस्वामी का बाल्य श्री यावन कर्म दबबद म अतीत हुआ । उनक बाल्य काल की अनक चमत्कार पूर्ण घटनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें उनक संस्कार गत मृदुन राधा-प्रेम की व्यंजना हाती है । पाँच बप की आयु में उनका श्री राधा स संभ्र-प्राप्ति हुई और कुछ दिन बाद था राधा क प्राप्ति स उन्होंने एक भगवद्-विग्रह को कुँए स निकाल कर श्री गी-साम श्री के नाम स देववन में प्रतिष्ठित किया । यह विग्रह पद्याबधि यही थी हिताशय क वनजा द्वारा पूजित है ।

षाठ बप की आयु में थी हिताशय का उपनयन सम्कार और सोलह बप की अवस्था में विवाह हुआ । उनको पत्नी का नाम श्री रुक्मिणी जा था जिनस उनका तीन पुत्र और एक कन्या हुई ।

बत्तीस बप की आयु में थी राधा क प्राप्ति स उन्होंने



बुन्दावन की घोर प्रस्थान किया। मार्ग में विरषावल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण के पास से उनको मगवद् विग्रह की प्राप्ति हुई जिसको उन्होंने श्री राधावल्लभ नाम से बुन्दावन में विराजमान किया और उनके नाम से ही अपने सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उन्होंने बुन्दावन में अन्य तीन केलि स्थानों-सेवा कुण्ड, रासमंडल और नाम सरोवर-को भी प्रगट किया। वे अपने जीवन के दोष ( सं० १६०६ ) पय त १८ वय बुन्दावन में रहे और राज से बाहर नहीं गये।

श्री कृष्ण-रति की प्रधानता	श्री हित हरियस ने अपने जीवन कास में प्रेमा भक्ति के दो नये सम्प्रदायों को स्थापित होते हुए देखा था। यह दोनों सम्प्रदाय श्री वल्लभ सम्प्रदाय और श्रीचैतन्य सम्प्रदाय श्रीकृष्ण की लोक वदातीत दुष्ट प्रेममयी ब्रजसीताओं को लेकर लड़े हुये थे और उनका एकमात्र लक्ष्य श्री कृष्ण के चरणों में एकान्त रति उत्पन्न करना था। ब्रज-सीताओं में श्री राधा कृष्ण की वे विविध शृङ्गार लीलाये भी आजाती हैं जिनका अत्यन्त आकषक वर्णन उक्त दोनों सम्प्रदाय के महात्माओं ने अपनी संस्कृत और ब्रजभाषा रचनाओं में किया है। इन वर्णनों में श्री राधा का स्वरूप अत्यन्त गरिमा युक्त और उज्ज्वल होते हुए भी रति का प्रधान विषय श्री कृष्ण ही हैं। श्री राधा आदि यज्ञांगनाओं की रति के भी वही एकान्त विषय हैं।
----------------------------------	--

श्रीहित हरियस गोस्वामी श्री राधा पदापात श्रीराधा-गणना सेकर भाव थे। उनको प्रधान रति श्रीराधा में थी। उन्होंने अपनी संस्कृत और ब्रजभाषा रचनाओं में राधा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन इस ढङ्ग में

किया है कि उसका द्वारा श्रीकृष्ण-रति के स्थान में श्रीराधा रति का उद्वाहन होता है। अपनी सम्कृत रचना 'राधा रस गुणानिधि' को समाप्ति पर उन्होंने अपनी वाणी का दा सप्त ग बताया है। एक यह कि वह 'कामल कुञ्जपुञ्जा स मुसोमित वृन्दाटकी मङ्गल स सप्तम है' और दूसरा यह कि 'उसमें प्रायश श्री यूपमानु नन्दिनी क पद-नख की ग्योति-छटा क्रीड़ा करती छती है।' हित चतुरासी में ता उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया है कि 'मैंने अपनी मति क अनुसार श्यामा श्याम की शृङ्गार-कलि का जा यह बयान किया है उसका अर्थ न श्रीराधा क श्रीकृष्ण परण काला में रति उत्पन्न होती है।' अन्त्य में उन्होंने आपस पूर्व श्रीराधा का ही अपना 'प्राणनाथ' धारित किया है।<sup>१</sup>

याहित हरिवन न अपन समय क जन समाज में श्रीराधा का जो रूप प्रचलित देखा जा वह उनकी दृष्टि में मामूली प्रकार का था। उन्होंने अपन एक श्लोक में 'प्रम रसाम्बुधि' श्रीराधा को भी काल-गति के क्रम से 'साधारण' बना हुआ देखकर देव का ममस्कार किया है। उनका मन और नेत्रों में श्रीराधा का जा 'ससाधारण' रूप समा रहा था उसकी प्रतिष्ठा क लिए उन्होंने विविध प्रयास किये जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

१ सप्ता' कामल कुञ्ज-पुञ्ज विनमशृन्दाटकी मङ्गले ।

श्रीकृष्णी यूपमानुजा पर-नख-ग्योति छटा प्रायण ।

(रा० गु० २६८)

७ हिन हरिवन यथामति बरतत कृष्ण श्यामृत पाद,

अवग मुनत प्रापक रति राधा पर-सम्पुञ्ज मुकुमार । द्वि. क ३०

२ गता काऊ काह ममहि दिये ।

धरे प्राणनाथ धीश्यामा धान करी गृण दिये । (पृ० का० -०)

१—उन्होंने श्री राधा-जन्मास्तव का प्रयत्न किया और अपनी सेवा-मदति में उसको श्रीकृष्ण-जन्मास्तव से अधिक महत्व दिया। स्वरचित श्रीराधा की जन्म-वर्षाई में उन्होंने प्रभो भक्तों का श्रीराधा के जन्म के समय कृपमानु गोप के द्वार पर चलने के लिए आह्वान किया है और वहाँ से आकर सबके ऊपर हृदिदामिधित दुग्ध दधि छिड़का है।<sup>१</sup> सूरदास जी में भी श्रीराधा की जन्म वर्षाईयाँ गाई हैं किन्तु जैसा उनकी एक वर्षाई में प्रकट होता है वे उस समय की रची हुई है जब श्री राधा का महत्व श्रीकृष्ण से भी अधिक बढ़ जाता था।<sup>२</sup> सूरदासजी (ज० सं० १५४० के लगभग) श्रीहिताशाय से १८-१९ वय बढ़ थे किन्तु वे उनका निकुञ्ज गमन के ११ वय बाद म० १६२० तक विद्यमान रहे थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में श्रीराधा की प्रथमता का स्थापित हाते देखा था और वे उग्रम ह्वित हुए थे।

२—उन्होंने अपने एक पद में यह बतलाया कि क्या

१ जन्मा कृपमानु गोप के द्वार ।

जन्म निवे मोहन द्विज क्यामा यान्त्र निधि मुकुमार ।।

× × ×

३ श्रीहित हृदिदामिधित दुग्ध दधि छिड़का मध्य तस्त्रिगार ॥

(सूरदास का १९)

साधु गवध म बचन बरार्थ ।

बन्धु कृत्त ताही की जिन यत् कृत्तियि मुन्यवत जाई ॥

× × ×

कृष्णाय रक्षामी त अधिप ह्य जन्मा निज मोहन बरार्थ ।

मुद्र बनी में श्रीगंगा नाम का ही गान करते हैं। उनका  
निज्य श्री हरिराम ध्याम न उस गायनाम का ही अपना परम  
घन बनाया है जिसका मोहन अपनी बनी में टंग है और बार-  
बार स्मरण करते हैं।

३—श्रीमद्भागवत में वर्णित रासलीला में गायिका  
के बीच में एक दयाम मुद्र के कम में सम्पूर्ण राम मंडल की  
रचना बतलाई गई है। श्रीगंगाधाम न इस बहुत मंडल के  
मध्य में एक ध्वज रासमंडल की राजता की और ज्यमें रासिका  
दयाम का स्थित बनाया। उनका अपना उदासता इस  
मध्यम्य मंडल पर ही आधारित का और इस मंडल व प्रतीक  
रूप में उन्होंने बुलावन व मध्य में एक राम मंडल का निर्माण  
कराया और वही श्रीगंगा की गायी की स्थापना की। मूरदाम  
जा न भी अपने कई रास क पत्र में उक्त योजना के अनुसार

१ मग मुनि धरत तव गवत आपन मन तथाहुनि घोषनि ।  
(हिं जी० ६५)

७ परम बत राधा नाम घोषार ।  
जाहि दयाम मुनी में टंग मुनिगन गायकार ॥

× × ×  
श्रीगुण घट्ट विलो नही माने जान मागवी माग ।  
ध्याम दाम धर प्रग्न बगान्त दार माग न माग ॥

(ध्याम का ३५)

३ दयाम संग रासिका रामकान्त बनी ।  
बीच मरदान बरदान बरतव दाम  
ज्यी व पर मुनिगन बिब कान्त बरतव मनी ।

(हिं जी० ७१)

गापी और ब्रह्म के द्वारा बनाये हुए मंडल में राधा मोहन का मध्य में स्थापित किया है ।

श्रीब्रह्मण रति के स्थान में श्रीराधा रति को स्थापना देखने में एक सामान्य सी घटना मान्य होती है किन्तु इससे द्वारा प्रामाणिक के क्षेत्र में एक नवीन ज्योति जग गई जिसके प्रकाश में प्रेम के धनेक नये पहलू कमरू उठे और एक सचचा मवीम प्रेम-व्यक्ति का स्थापन हो गया जो नित्य विहार पद्यति भयवा राधा-व्यक्ति कहलाती है । श्री ब्रह्मण रति को प्रधान मानने वाली प्रेम-व्यक्ति से यह धनक बाता में भिन्न है घत इसमें राधा ब्रह्मण का स्वरूप उनका परस्पर प्रेम-सम्बन्ध उनका शीला-बिलास आदि सब कुछ भिन्न प्रकार का है । प्राचीन पुराणों में कहीं भी श्रीराधा का रति का प्रधान विषय बनाने का उद्यम दिसलाई नहीं देता इस स्थान पर तो सर्वत्र श्रीब्रह्मण ही विराजमान हैं ।

द्वय श्री हित हरिवंश गोस्वामी द्वारा रचित ब्रजभाषा रचना-काव्य में ब्रज १११ छन्द प्राप्त है जिनमें 'म श्रीगामी पद हित श्रीगामी' या हित चतुरामी का नाम स मकसित है और शेष ७ छन्द 'ध्रुवर वागी या 'स्पृष्ट वागी कहलाते हैं । इन पदा का सम्बन्ध और उक्त काव्य में

१. लक्ष्मण राम राम कीर्ती ब्रज लखनिनु विविक्त मुग सीनी ।

×

×

×

बिज गापी बिज विदे मोलाय बणि बचन माडुति मुम पाय ॥

राधा मोहन मध्य विराज ब्रजुवन की गोवा ये भावै । इत्यादि

मू० मा० पृ० १३२ ब्रजदेशक प्रेम संस्करण

विभाजन का हुआ है इसका अनुमान लगाने के लिए हमारे सामने दो सध्य हैं और दोनों सेवक बाणी से संबंधित हैं। सेवक बाणी श्री हिताचार्य के बाद में रचा जाने वाला सम्प्रदाय का प्रथम ग्रन्थ है। इसमें श्री हित जी के जितने छन्द उद्धृत किये गए हैं वे सब हित चौरासी के हैं एक भी छन्द स्फुट-बाणी का नहीं है। इससे यह सीधा अनुमान होता है कि श्री हितहरिबल की बाणी का विभाजन सेवक बाणी की रचना से पहिले हो चुका था।

दूसरा तम्य 'रसिक ग्रन्थ मास में दिये हुए सेवकजी के चरित्र से प्राप्त होता है। सेवक बाणी की रचना के बाद श्री हिताचार्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री बनबद्र गास्वामी ने जब उमको सुना तो वे बहुत प्रभावित हुये और उन्होंने दोनों ओपियों— बौरासी और सेवकबाणी—को साथ में लिखवाया और आता वा \* कि इन दोनों को साथ ही लिखना पड़ना चाहिये। इससे भी यही सिद्ध होता है कि हित चतुरासी का संकलन सेवक-बाणी की रचना से पूर्व हो चुका था।

१. अब ठ घात्रा द<sup>२</sup> दुगई पाकी दाऊ निरी निरगई ।

चौरासी अरु सेवक बाणी इक संग निरगत-वदन सुगहानी ।

२० घ० मा० पृ० १०

- इस घात्रा का अर्थ श्री पामल हुआ मामुम आता है। सेवक के अंगरहनी मरी की निम्नी हुई हित चौरासी की कई ऐसी प्रतियाँ बनी हैं जिनमें सेवक बाणी मरी संग रही है। इसमें से एक प्रति बाके बिहारी जी के गोस्वामी लीम बाजी के यहाँ है। यह मम्बन् १३१० की लिगी है।

सबकाणी सेवक वाणी में रचना का स नहा दिया है  
 का किन्तु उससे घन्त सादय से यह स्पष्ट  
 रचनाकाय प्रतीत होता है कि यह अक्षर क शासन का  
 में रही गई है । सेवक जी ने श्री हिताचार्य क  
 जन्म का प्रभाव वर्णन करते हुए कहा है कि उनका प्रगल्भ हाते  
 ही सोगा में परस्पर प्रीति बढ़ गई थीर क अपने-अपने धर्मों का  
 पालन करने लगे । धारों धोर सुभिक्ष हो गया । स्तेच्छ यण  
 हरि के यश का बिस्तार करने सग धोर परम मलित वाणी  
 वासने लगे । सबको अपने रुचि क अनुसार जीवन यापन की  
 स्वतन्त्रता मिल गई थीर स्पेच्छ पासक घनी प्रजा का पालन  
 करने लगे ।<sup>१</sup>

धार्मिक उत्पीड़न धोर राजनीतिक अमुरसा क उम युग  
 में उपर्युक्त स्थिति अक्षर क शासन का स में ही बनी थी । अक्षर  
 कर ने स १६२० (सन् १५६३) में हिन्दुधर्मा पर स तीस वाधा  
 का कर लगा लिया था धोर इसके एक वर्ष बाद अत्रिया भी  
 बिलगुप्त बन्द कर दिया था । प्रजा के सब वर्गों का उमने पूण  
 धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी थी धोर उसकी मुद्रक धोर पक्षान्त हान  
 शासन प्रणामी के कम स्वरूप देण में गवप्र पालि धोर मुग्धा  
 पस गई थी । अत सबक वाणी की रचना स० १६२२ क सग  
 भग हुई होगी । रसिक अनाय मास में अक्षर जी के जीवन की  
 पन्नाया का कम जिस प्रकार दिया गया है उमस यह प्रतीत  
 होता है कि उनकी वाणी की रचना श्रीहिताचार्य क निरुज  
 गमन क चाड़े दिन का—धार्मिक ग धार्मिक पांच वर्ष के अन्दर

ही हुई है<sup>१</sup> किन्तु प्रायः के अन्त साध्य स उपयुक्त काल ही निर्धारित होता है।

अन्य समकालीन चाचा हित वृन्दावनदास ने नित्य विहार  
बाणीवार की उपासना और उसके प्रचार में हिता-  
चार्य के तीन सहयोगी बताये हैं—स्वामी

हरिदास जी, श्री हरिराम व्यास और श्रीप्रवाधानन्द सरस्वती।  
उक्त तीनों रसिक महारामाओं ने श्री हिताचार्य के जीवन काल  
में ही नित्य विहार का गान प्रारम्भ कर दिया था किन्तु य  
तीनों उनके निकट अ गमन के बहुत दिना बाद तक विद्यमान रह  
थ और काव्य रचना करते रहे थे। स्वामी हरिदास जी ज्ञानसेन  
क शिष्या गुरु माने जाते हैं। ज्ञानसेन को अक्रूर मे सं० १६१६  
में रोवा के राजा रामचन्द्र से मांगा था। अक्रूर का प्रारम्भिक  
जीवन साम्राज्य का विस्तार करने में व्यतीत हुआ था और वह  
सं० १६२५ के पूर्व स्थिर न हो सका था। वह स्वामी हरिदास  
जी सं सं० १६२५ और १६३० के बीच में कमी मिला होगा  
और इस प्रकार स्वामी जी की उपस्थिति उक्त काल तक अनु-  
मानित होती है। अतः रथे पदा का 'कैमिमास और 'सिद्धान्त

१ अधिक अमल्य मास क गवक अरिष का गद्य अणाम्। इस पुस्तक  
य गवक बागी क प्रारम्भ में दिया गया है।

२ सबसे जु मुहुट एणि व्यासनन्द पुनि मुध्म मुमोहन कुन मुचंद।  
मुन धामपीर भूरति अमल्य पनि भवितथम्भ परबोधानन्द।  
इन विमि जु अक्ति कीमी प्रचार अज-अश्विन निग प्रति विहार।  
अन क्रिये मनाय मपि धुनि जु सार, मंगल हू की मंगल विचार।।

(श्रीहरिदास जु श्री परिवार मरिग अमल्य अण अण)



के पर्व' के रूप में संकलन भी सं० १९२० के बाद बना हुआ होगा ।

श्री हरिराम व्यास ने स्वामी हरिदास जी की प्रशंसा में कई पद कहे हैं । उनमें से एक पद में यह आभास मिलता है कि स्वामीजी का निकुञ्ज वास उनके सामने हो गया था और व स्वामी जी के बाद अनेक वर्षों तक जीवित रहे थे ।<sup>१</sup> श्री प्रबोधानन्द सरस्वती ने हिताचार्य के द्वितीय पुत्र श्री बृहस्पतिरास्वामी के संदृत वाक्य ग्रन्थ 'कर्णानन्द' की टीका की है । उक्त ग्रन्थ में रचनावास शब्द १२०० ( सं० १६३२ ) दिया हुआ है ।<sup>२</sup> परंतु श्री प्रबोधानन्द उक्तवास के बाद तब विद्यमान थे ।

युगसप्त निगद्यार्क सम्प्रदाय की ओर से श्री मठ जी एष का उनके सिष्य श्री हरिव्यासदेव जी जिबा श्री हरि रचनाकार प्रिया जी की निरय विहार के घाघ मायक बत साया जाता है । श्रीमठ जी 'युगसप्त' के कर्ता प्रसिद्ध हैं । इस ग्रन्थ में रचनावास दिया हुआ है—

कवन बाण पुनि राग रासि गनीं अरु गति वाम ।  
प्रगट भयो श्रीयुगसप्त रास यह एवन् अभिराम ॥

१ अनस्य श्रुति स्वामी हरिराम ।

× × ×

अपनी वन हृदि घोर निवासी जब मणि कठ उमास ।

× × ×

अबके मायु ध्यान हयह न जगत् करत उगगत ॥

(प्या० वा० ७०)

२ इत्यादिवाक्ये तत्रापि कवन-मगल-बाणेन्दु मन्व्ये स्थीत

इस दाहे के अनुसार युगसप्तत का रचना काल सं० १६५२ सिद्ध होता है। निम्बार्क संप्रदाय की प्रारंभ से 'राग' के स्थान में 'राम' पाठ बतलाया जाता है जिससे सं० १३५२ निर्धारित होता है। हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास-ग्रन्थों में भीमट जी का परिचय और उनकी रचनाओं के उदाहरण दिए हुये हैं किन्तु यह सब भीमटजी का रचना-काल सत्रहवीं शती का पूर्वाध ही मानते हैं। उनकी मान्यता का आधार नागरी प्रचारिणी सभा काशी अथवा अन्यत्र मिसन वासी युगसप्तत की प्राचीन प्रतिमाँ ही हैं। मेसूरक को भी नागरी प्रचारिणी सभा के द्योष विभाय से सं० १८६८ की एक प्रति का विवरण प्राप्त हुआ है और उसमें भी 'राग ही पाठ है 'राम' नहीं है।'

१ २३-४०० ए

धादि—

धी क्लेष्टायनम । धीलाङ्गिनीमान को जय । धी निम्बा  
दित्य नम धी धादि बाणो युगसप्तत भीमट जी महा-  
राज कृत लिख्यते । सं० १८१८ माघ मासे कृष्ण पक्षे  
दुम दिन । छप्पै ।

२१-४०० बी—

धात—

धप धन स्तुति लिख्यते ।

धीमट मयट युगसप्तत पङ्क कंठ ठिहुँ कात ।

मुदग नेति अकमोरु तें , मिटे विषय अज्ञान ॥

नयन-बाण पुनि राग-धति गर्मी धरु मति नाम ।

मगट धपो धी दुपननन यह संकन् धमिराम ॥

इसके प्रतिरिक्त एक बात और भी है। श्री हरिराम व्यास ने अपने समकालीन अनेक प्रसिद्ध भक्ता की महिमा का गान अपनी 'साधुन की स्तुति' में किया है। इस 'स्तुति' के अन्तिम पद में उन्होंने 'सैन धना भद्र नामा पोपा' से आरम्भ करके अपने समकालीन भक्तों के नामों की पूरी तालिका दी है किन्तु उसमें श्रीभटजी का नामोत्प्लेख नहीं है।<sup>१</sup> यदि श्रीभट जी व्यासजी के जीवनकाल में या उनसे पूर्व भक्त रूप में प्रसिद्ध हो गये होते तो व्यासजी उनका उल्लेख किए बिना नहीं रहते। प्रवृद्धास जी की 'भक्त-नामावली' की रचना व्यासजी के निकुंज गमन के बाद हुई थी।<sup>२</sup> उसमें हम श्रीभटजी के नाम का उल्लेख पते हैं।<sup>३</sup> अथ 'युगसप्त' का रचना काल स० १६५२ ही ठीक प्रतीत होता है और हितचतुरासी की रचना इसका बहुत पूर्व हो चुकी थी। हरिव्यास देव जी श्रीभट जी के विषय में अथ उनका नाम स्वभावतः श्रीभटजी के बाद आता है।

१ 'व्यासवाणी' पृष्ठ ५० ८१ पर अतिव्यक्त भारत पर्याय श्री हित राया बल्लभीय महात्मना कृष्णधन का संस्कारण ।

२ बह्मी-करनी बरिपयो एक व्यास इन्द्राज ।  
सोव-वेद सत्रि क अत्रि राधा बल्लभ साव ॥

(बल्ल नामावली)

३ अर्धमात्र श्रीभट अद पगल अत्र कृष्णधन गायो ।  
बरि अनीत्रि अर्धोपरि जायो आत्रे बिजल तपायो ॥

(बल्ल नामावली)

प्राचीन प्रतियों हित चौरासी को अधिकांश प्रतियाँ कम और पढ़े लिखों द्वारा लिखी मिलती हैं। उनके टीकायें प्राधार पर ग्रन्थ का पाठ सदासन सुभव नहीं है। सेलक का इस काय के लिए प्राचीन टीकायें बहुत उपयोगी मासूम दी हैं। वसे अधिकांश टीकायें भी अपढ़ लिखियों की लिखी हुई हैं किन्तु उनमें मुविधा यह है कि मूस का अनुसंबान धर्म के द्वारा हो जाता है। लिखियों क लिये 'मुन्दरि' के स्थान में 'मुन्दर' और 'मुन्दर' के स्थान में 'मुन्दरि' लिख देना मामूली बात है किन्तु धर्म के सहारे टीका पाठ समझ में आ जाता है। 'हित चतुरासी' का वर्तमान पाठ प्रमदास जी की टीका में दिए हुए पाठ के अनुसार है। यह टीका विक्रम की अठारहवीं सदी के अन्तिम दशक में लिखा गई है उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के टीकाकारों ने प्रमदासजी का पाठ स्वाकार करने टीकाएँ लिखी हैं। किन्तु प्रमदास जी से पूर्व के टीकाकारों में कई पदों में पाठ-भेद दिखलाई देता है तथा अर्थ कई भेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। नीचे प्रमदासजी से पूर्व की टीकाया का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

१—श्री रसिहसास गोस्वामीकृत 'रहस्य अथ निरूपण' नामक टीका। यह टीका स० १७३४ की व्याख्यान मुबला तीज की पूर्ण हुई है।<sup>१</sup> हित चतुरासी की प्रचलित प्रतियों में एक कमस्तुति संगी हुई है जिसमें दो छप्पय हैं। इसके साथ एक

१ मन्त्र मन्त्रम् अब बरम बीते बीनीम ।

गुम मावन मुक्ता जु मुग् नीज नु निपिनु अवीस ॥

कविस राग गणना का भी लगा हुआ है। उक्त टीका क मूम क साम यह तीना ही छन्द मही है। इसके स्थान में टीकाकार कृत एक फलस्तुति दोहा में सय रही है। दूसरी भिन्नता यह है कि प्रचलित प्रतियों में प्रथम पाँच पद विभास राग में हैं इस टीका में क लमित राग में है। इसका प्रतिरिक्त इस टीकामें दूसर पद क स्थान में प्रचलित तीसरा पद है और तीसरे के स्थान में दूसरा। प्रचलित प्रतिवा स इस टीका के पाँच पदों में पाठ भद है। ११ व पद की दूसरी पंक्ति में 'मणि' के स्थान में 'मनी' पाठ है। १६ वें पद की दूसरी पंक्ति में 'मम' के स्थान में 'मनी' पाठ है। ४३ व पद की दूसरी पंक्ति में 'वितवस' के स्थान में 'वितवनि' पाठ है। ५६ व पद की दूसरी पंक्ति में 'सो' क स्थान में 'ग्या' पाठ है। ६३ व पद के चौथे छन्द की तीसरी पंक्ति में 'मुन्दरि' के स्थान में 'मुन्दर' पाठ है और इन्हीं पाठों का अनुक्रम टीका की गई है।'

२—हित धर्मगोचर दास कृत टीका<sup>१</sup>—इस टीका की पृष्ठिका इस प्रकार है गद्य १७६६ फाल्गुण मास शुक्ल पक्ष १५ पूर्णमासी (रात) की सपूर्णा। संवत् नाम पाठिन परमा-मन्द धर्म्याम उदपरा गुभमस्तु श्रीरस्तु मुहस्त धरनीधरदास मुन श्री जगजीवन दास क। इसमें प्रतीत होता है कि यह प्रति उक्त गद्यमें टीकाकार के पुत्र जगजीवनदास के लिए लिखी गई है और यह इमरा रचनाकाव्य नहा है। टीका का धारम्भ में श्री राधा बन्धमात्रयति श्री व्यागनन्दनो जयति श्रीरथा रामान्तर मणि जयति लिखा है। इससे यह अनुमान जाना है कि टीकाकार

१ का टीका पा० श्री धर्मदेवी नाम श्री के मद्रह में है।

२ पर टीका योग्या श्री विानदरी क पदा महीन है।

श्री हित्ताचाय व प्रपात्र श्रीदामोदर गोस्वामी के शिष्य थे। उक्त गोस्वामी जी का काल सन् १६३२ से १७१४ तक है। यदि टीकाकार ने अपने गुरुदेव के जीवन काल में यह टीका लिखी हो तो यह सप्रहर्षा घटी के घन्त की या अठारहवीं क आदिकी टीका हो सकती है।

इस टीका में भी प्रथम पाँच छन्द सलित राग में रचे गए हैं और पदोंका क्रम भी कई स्थानों में परिवर्तित है। प्रचलित प्रतियों का २६ वाँ पद और उसके बाद के छ पद देव गधार राग में हैं। इस टीका में उक्त पद २१ वाँ पद है और यह तथा इसके बाद में छ पद गूजरी राग में हैं। शौरसिक साम जी की टीका में यह सातों पद देव गधार राग में ही हैं और इनकी क्रम-संख्या भी प्रचलित प्रतियों जसी ही है। इस टीका में सबसे बड़ा पाठ भेद १८ वें पद में है। प्रचलित पाठ 'साको त अघर मुघारस चाक्यो' के स्थान में इसमें 'तिन नेगी अघर मुघारस चाक्यो' पाठ है। इससे अर्थ विक्रम बदल जाता है। श्री रसिक मान गोस्वामी एक उतर बाद के सब टीकाकार ने 'साको त अघर मुघारस चाक्यो' पाठ ही रखा है। इस पाठ वाली कई अन्य टीका या हित्ताचरुगी की कोई प्रति प्राप्त हान पर ही इस पाठ की पुष्टि हो सकती है। ६० वें पद की प्रारम्भिक पंक्ति 'बठेनाम निरु ज भवन के स्थान में इस टीका में 'तिन बर मान निरु ज भवन' पाठ है। ६२ वें पद की पाँचवीं पंक्ति में 'मारङ्ग ज्यों के स्थान में 'मारङ्ग' पाठ है और छठी पंक्ति में 'माहन विनु की जगह माहन ज्यों पाठ है। १६ वें पद की चौथा पंक्ति में 'तोत्र साधन' के स्थान में 'साभ साधन' पाठ है।

३—श्रीसुरमान गोस्वामी की टीका—यह टीका पद-सं-

पुस्तक ३ सं० १७७० को पूर्ण हुई है।<sup>१</sup> संसद ने इस टीका का जो प्रति<sup>२</sup> देली है उसमें मूल पदों की बेवस प्रथम पंक्ति दी हुई है अतः पाठ सुगोचर का अर्थकाय इसमें नहीं है। फिर जो पाठ भेद बासे स्थानों को देखने से मामूम होता है कि इस टीका में प्रथम पाठ ही स्वीकृत है। फल स्तुति बासे दो छप्पमा में से पहिला छप्पम प्रथम बार इस टीका में लगा मिलता है। टीका कवितों में की गई है। टीकाकार मुकबि हैं और टीका जेमे पराधीन क्षेत्र में भी उसकी काम्य प्रतिभा अपनी उमुक्त भक्त दितमाए बिना नहीं रही है।

४—सुकनास जी की टीका—यह टीका अत्रमाया गद्य में है। टीकाकार ने धारम्भ में श्रीमुखसाल गोस्वामी का बंदना की है।<sup>३</sup> इसमें रचनाकास नहीं दिया गया है। संसद के पास इसकी सं० १=८१ की प्रति है। यह मुखसालजी की टीका म धाड़े हो चाये-याड़े मिया गई होगी अतः इसका कास भी वही मानना ठीक रहेगा।

५—प्रमदास जी की टीका—यह हित चतुरासी की सबसे अधिक विग<sup>४</sup> और मूल का अनुसरण करने वाला टीका

- १ मकर मकरम काम बोलने मकर और ।  
नगूरन बानी कई सोपी कम मिर और ॥  
बैमागी मिलनीय को नालम हृदयो कीन ।  
अपटाई तिम गुरु प्रगट मनमें प्रति गुण हीन ॥
- २ यह प्रति गोस्वामी धीरूपमानजी के मकरासय में है ।
- ३ धीरूपमान अरोचदर तिमही निज मिर बरिद ।  
स्वाम सुवन सुम तिम की टीका मिलन विचरि ॥

माना जाता है। यह भी ब्रजभाषा गद्य में है। इसमें फल स्तुति के दोनों छप्पय सगे हुए हैं और उनके साथ राग गणना वाला कवित्त भी है। हित चतुरासी का प्रचलित पाठ और उसके पोछे सगो फल स्तुति आदि इस टीका के अनुसार ही है। प्रमदास जी ने फलस्तुति के छप्पयों और राग-गणना वाले कवित्त की भी टीका की है। उन्होंने प्रथम छप्पय को श्रीहिता धार्य के ज्यष्ठ पुत्र श्री बनचन्द्र गोस्वामी की रचना बतलाया है किन्तु यह समझ में नहीं आता कि अठारहवीं शती के आरम्भ के टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में इस कयो नहीं दिया? जैसा हम देल चुके हैं यह छप्पय सवप्रथम श्री सुखसास गोस्वामी की टीका में सगा मिसता है किन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं की है। अतः प्रामाणिक रूप से इसका अङ्गीकार प्रथमवार प्रमदास जी की टीका में ही हुआ है। दूसरे छप्पय में तो स्पष्ट रूप से श्री रूपसास गोस्वामी के नाम की छाप लग रही है। राग-गणना वाला कवित्त प्रेमदास जी ने श्रीहरजीमल द्वारा रचित बतलाया है। यह हरजीमलजी गोस्वामी बुजसास जी के शिष्य थे और अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। इस टीका की रचना स० १७६१ में हुई है।<sup>१</sup>

प्रकाशित — हित चौरासी का प्रथम संस्करण मयूरा के  
 संस्करण श्यामशासी प्रेस से 'प्रेमसता' नाम से लेखो  
 अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रकाशन  
 का सबन् नहीं दिया हुआ है किन्तु ऐसा मुना जाता है कि यह  
 स० १६६० के लगभग प्रकाशित हुआ था। यह बहुत अगूढ़ है।

१ यह टीका गोस्वामी श्रीबलदेवनाथ जी के सग्रह में है।



सुबह ३ सं० १७७० का पूर्ण हुई है।<sup>१</sup> सेखन ने इस टीका का जो प्रति<sup>२</sup> देखी है उसमें भूम पदों की केवल प्रथम पंक्ति दो हुई है अथ पाठ सगोषम का अर्थकाय इसमें नहीं है। फिर भी पाठ भेद वाले स्थानों को देखने से मालूम होता है कि इस टीका में प्रथम पाठ ही स्वीकृत है। फल म्युति वाले दो छप्पयों में से पहिला छप्पय प्रथम बार इस टीका में लगा मिलता है। टीका कविता में भी गई है। टीकाकार सुकवि हैं और टीका जैसे पराधीन क्षेत्र में भी उनकी बाह्य प्रतिभा अपनी उमुक्त मनस दिखलाए बिना नहीं रही है।

४—साक्षनाथ जी की टीका—यह टीका अत्रभाषा गद्य में है। टीकाकार न धारम्भ में श्रीगुरुलाल मास्वामी का बतना की है।<sup>३</sup> इसमें रचनाकाल नहीं दिया गया है। संज्ञक का पास हमरी सं० १-८१ को प्रति है। यह मुगलशासकी की टीका में थोड़ा ही छोटे-बोछे मिगल गई हागी अतः हमका काम भी वही मानना ही रहेंगा।

१—प्रमत्त जी की टीका—यह हित चतुरासी की गद्य अथिब विगत घोर मूल का अनुसरण करके वाला टीका

१ महा मयराग काम बोड मगर और।

गणपत बाभी भई गोपी मम गिर मौर ॥

बैसागो मिलगोत्र को मालन हूयो बीन।

प्रगटार्दित मुद्र प्रगट बनमे अति मुग बीन ॥

२ यह प्रति गोष्वासी श्रीगणनाथकी के मयरागम में है।

३ श्रीगुरुलाल मरोडारदित्तरी निर गिर धारि।

ध्याग मुबन गूढ गिरा की टीका निगल विचारि ॥

माना जाता है। यह भी ब्रजभाषा गद्य में है। इसमें फल स्तुति के दोनों छप्पय लग हुए हैं और उनके साथ राग गणना वाला कवित्त भी है। हित चतुरासी का प्रचलित पाठ और उसके पोछे लगी फल स्तुति आदि इस टीका के अनुसार ही है। प्रेमदास जी ने फलस्तुति के छप्पयों और राग-गणना वाले कवित्त की भी टीका की है। उन्होंने प्रथम छप्पय को श्रीहिताचार्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनधन्द्र गोस्वामी की रचना बतलाया है किन्तु यह समझ में नहीं आता कि अठारहवीं शती के धारम्भिक टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में इस क्यों नहीं दिया? जैसा हम देख चुके हैं यह छप्पय सबप्रथम श्री सुखसाल गोस्वामी की टीका में लगा मिलता है किन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं की है। अतः प्रामाणिक रूप से इसका अज्ञात प्रथमवार प्रेमदास जी की टीका में ही हुआ है। दूसरे छप्पय में तो स्पष्ट रूप से श्री रूपसाल गोस्वामी के नाम की छाप लग रही है। राग-गणना वाला कवित्त प्रेमदास जी ने श्रीहरजीमल द्वारा रचित बतलाया है। यह हरजीमलजी गोस्वामी वृजसाल जी के शिष्य थे और अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। इस टीका की रचना सं० १७६१ में हुई है।<sup>१</sup>

प्रकाशित — हित चौरासी का प्रथम संस्करण मधुरा के  
 लस्करण श्यामशशी प्रेस से 'प्रमलता' नाम से सेपो  
 अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रकाशन  
 का सबन् नहीं दिया हुआ है किन्तु ऐसा सुना जाता है कि यह  
 सं० १६६० के लगभग प्रकाशित हुआ था। यह बहुत अनुद है।

१ यह टीका गोस्वामी श्रीवसदेवसाल जी के मद्रह में है।

दुकस ३ सं० १७७० को पूर्ण हुई है ।<sup>१</sup> लेखक ने इस टीका का जो प्रति<sup>२</sup> बेखी है उसमें मूल पद्यों की केवल प्रथम पंक्ति ही हुई है अतः पाठ सहायन का अर्थकाय इसमें नहीं है । फिर भी पाठ भेद वाले स्थानों को देखने से मालूम होता है कि इस टीका में प्रथम पाठ ही स्वीकृत है । फल स्तुति नामे दो छप्पयों में से पहिला छप्पय प्रथम बार इस टीका में लगा मिलता है । टीका कविता में की गई है । टीकाकार सुनबि हैं और टीका जैसे पराधीन क्षेत्र में भी उनकी काव्य प्रतिभा अपनी उन्मुक्त मनक विप्लवाए बिना नहीं रही है ।

४—साकनाथ जी की टीका—यह टीका अत्रभाषा गद्य में है । टीकाकार ने आरम्भ में श्रीगुरुनाथ नाम्नामी का बंदना की है ।<sup>३</sup> इसमें रचनाकाल नहीं दिया गया है । लेखक के पास इसकी सं० १-८१ का प्रति है । यह गुरुनाथजी की टीका से थोड़े ही आगे-पीछे मिली गई होगी अतः इसका नाम भी वही मानना ठीक रहेगा ।

५—प्रमदास जी की टीका—यह हित चतुरासी की सबसे अधिक विद्यन और मूल का अनुसरण करने वाला टीका

- १ मदन मन्मथ नाम होते मगर और ।  
मयूरक बानी भई सोषी धम मिर मौर ॥  
बसायो नितनीच की सीतल हृदयो बीच ।  
बनगई तिन बुझ प्रगट मनमे धति मुख रीत ॥

२ यह प्रति गौम्नामी धीरूपनाथजी के मधुसूदन से है ।

- ३ धीगुरुनाथ नरोत्तम विबली नित्र निरु चारि ।  
ध्याग मुख मुख दिग की, टीका निगन विचारि ॥

माना जाती है। यह भी अक्षभाषा गद्य में है। इसमें फल स्तुति के दोनों छप्पय सगे हुए हैं और उनके साथ राग-गणना वाला कवित्त भी है। हित चतुरासी का प्रथम पाठ और उसके पाछे सगे फल स्तुति आदि इस टीका के अनुसार ही है। प्रेमदास जी ने फलस्तुति के छप्पयों और राग-गणना वाले कवित्त की भी टीका की है। उन्होंने प्रथम छप्पय की श्रीहिता चाय के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र गोस्वामी की रचना बतनाया है किन्तु यह समय में नहीं आता कि अठारहवीं शती के प्रारम्भ के टीकाकारों ने अपनी टीकाओं में इसे क्यों नहीं दिया? जसा हम देख चुके हैं यह छप्पय स्वप्रथम श्री मुखलाल गोस्वामी की टीका में सगा मिलता है किन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं की है। फल प्रामाणिक रूप से इसका अङ्गीकार प्रथमवार प्रेमदास जी की टीका में ही हुआ है। दूसरे छप्पय में तो स्पष्ट रूप से श्री रूपसास गोस्वामी के नाम की छाप लग रही है। राग गणना वाला कवित्त प्रेमदास जी ने श्रीहरजीमल द्वारा रचित बतसाया है। यह हरजीमलजी गोस्वामी बु असास जी के शिष्य थे और अठारहवाँ शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। इस टीका की रचना सं० १७६१ में हुई है।<sup>१</sup>

प्रकाशित — हित चौरासी का प्रथम सुस्वरण मयुरा के  
 लक्ष्मण श्यामकाशी प्रेस से 'प्रेमलता' नाम से सेयो  
 अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रकाशन  
 का मयू नहीं दिया हुआ है किन्तु ऐसा सुना जाता है कि यह  
 सं० १६६० के लगभग प्रकाशित हुआ था। यह बहुत अगूढ़ है।

१ यह टीका गोस्वामी श्रीबन्नेबतान जी के मयू में है।

- द्वितीय संस्करण गो० गोवर्धनदास जी 'प्रेम कवि' ने हित धौरासी के नाम से प्रकाशित किया था। इसमें भी प्रकाशन-काल नहीं है। इसमें पाठ अधिक शुद्ध है। यह संस्करण सं० १९६५-६६ ई. लगभग का बनाया जाता है।
- तीसरा संस्करण गोस्वामी सोहनदास जी द्वारा सं० १९७१ में प्रकाशित किया गया। यह काफी शुद्ध छपा है और इसमें सेवक बाणी भी लग रही है।
- चौथा संस्करण जयपुर से श्री सुन्दरीधरण जी द्वारा प्रकाशित हुआ। सेवक को यह कहीं देखने को नहीं मिला। अतः इसके संबंध में कोई जानकारी नहीं दी जा सकती।
- पाँचवाँ संस्करण 'पोद्दार ग्रन्थावली' में गोस्वामी गोपाल धस्तभाचार्य ने प्रजेन्द्र प्रसू बुन्दावन से प्रकाशित किया। इसमें भी प्रकाशन—संवत् नहीं दिया गया है। यह अनुमानित सं० १९८८ में प्रकाशित हुआ था।
- सं० १९९३ में श्री बनधारीदास गोस्वामी ने 'बनुरासी सेवक बाणी' के नाम से एक संस्करण प्रकाशित किया।
- इसी वर्ष में गोस्वामी रूपदास जी अधिकारी ने श्रीहित सुभा सागर' नाम से एक संग्रह ग्रन्थ छपाया और उसमें हित धौरासी को भी सम्मिलित किया।
- सं० १९९४ में उक्त गोस्वामी जी ने श्री हित सुभा सागर का एक संस्करण गुजराती अक्षरों में प्रकाशित किया।
- सं० २००६ में बाबा द्वारिकादास ने 'श्री हितामृत सिन्धु के नाम से धौरासी-सेवक बाणी का प्रकाशन किया।
- सं० २०१४ में ज्योतिषी पं० रामदास रोबा वार्मा ने 'श्री हितामृत निधि' नाम से हित धौरासी-सेवक बाणी का एक संस्करण प्रकाशित किया।

इसी वष में—प० रामानन्द कृष्णव ने श्रीहित सुधा सिंधु' नाम रखकर हित श्रीरासी-सेवकवाणी का एक संस्करण निकाला, यही संस्करण आजकल बाजार में है।

### ग्रन्थ समीक्षा

प्रेमार्नात्मक हित श्रीरासी प्रेमार्नात्मिक भ्यजनक शृङ्गारी काम्य  
घौर ग्रन्थ है। प्रेमार्नात्मिक वह भक्ति है जिसमें भगवान्  
उसके भासबन के साथ भक्त का सहज प्रेम-सम्बन्ध होता है।  
कृष्णव-सिद्धान्त में भगवान् के दो रूप मान गए  
हैं—प्रगट् घौर अन्तर्यामी। प्रगट् रूप से सात्त्विक भवत्तरित रूप स  
है। श्रीमद्भागवत में भगवान् के दस प्रधान भवत्तर मान गये  
हैं, किन्तु उनमें प्रेमार्नात्मिक व भासबन राम घौर कृष्ण ही  
बने हैं।

अन्तर्यामी भगवान् का अन्तर्यामी रूप वह है जो जेवमात्र के  
रूप अन्तर में साधो रूप से अस्तित्व है। विक्रम की  
पन्द्रहवीं घौर सोसहृवीं शती में उद्भूत भारत में,  
भगवान् के उक्त दोनों रूपों से प्रेम करने वाले भक्त प्रगट् हुए  
घौर उनके साथ भगवत् प्रेम की दो विधायें उसके दो रूप  
सामने आये। कबीरदास जी आदि सन्तों का प्रेम अन्तर्यामी  
रूप के साथ है। उनके अन्तर्यामी 'राम निगुण, अरूप, असीम  
घौर अत्यन्त रहस्यमय सत्व हैं अतः कबीरदास जी आदि के  
प्रेम में उनके प्रमासद व अनुरूप, विद्यालता, अतीन्द्रियता  
घौर रहस्यमयता दिखलाई देती है। इस प्रेम का घटन ज्ञान  
की विद्यास भूमिका पर होता है घौर दोनों के इस प्रकार मिलने  
से प्रेम का एक विनिष्ट रूप प्रगट् हाता है जो अनेक लोगों को  
अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होता है।

प्रगट रूप किन्तु भगवान के प्रगट रूप के प्रेमियों को इस प्रकार के प्रेम से सतोष नहीं होता। उनका दृष्टि में इस प्रेम में, विरह की पीड़ा, मिलन का सुख संपूर्ण आत्म समपण आदि सब कुछ होता है किन्तु प्रमास्यद का 'साढ़ दुसार' नहीं होता। आसन्न की विशामता और धरुपता इसमें बाधक बनती रहती है। साह-प्यार के लिए मनुष्याकार आलंबन की आवश्यकता होती है जो स्वयं देहवान हो और जिसका ग्रहण प्रेमी अपनी नप्रादिक इन्द्रियों से कर सक। श्रीमद्भागवत (१०-१४-३३) में ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण के दर्शन करने के बाद अपने साथ एकावदा इन्द्रिया के उन अधिष्ठातृ देवताओं के भाग्य की प्रशंसा की है जो श्रीकृष्ण के इन्द्रिया को अपने बनाकर भगवान मुकुन्द के चरण-कमल मकरन्द का निरन्तर पान करते रहते हैं। सूरदास के अमर गीत में उठव जी गोपियों की विरह उवासा की दार्ति के लिए उनको श्रीकृष्ण के अस्तर्षामी रूप का भजन करने को कहते हैं। किन्तु गोपियाँ विवश हैं। यह जानत हुए भा कि भगवान अस्तर्षामी रूप से उनका अग्र्यस्त निकट हैं उनके मंत्र प्रगट रूप के दर्शन के लिये ही व्याकुल बन रहते हैं प्रगट दर्शना के बिना अस्तर्षामी रूप के किन्तन में उनको कोई सुख नहीं मिलता। श्रीकृष्ण के इन्द्रिय-गोचर होने के कारण गापिशा के प्रेम में

१ गीता बाहिरी के रहने।

यद्यपि मधुप गुम गंदनगन्ध की निरन्तरि निरन्तर काम।

दृश्य मोक्ष जो हरिहि बतावत गीगो नाहि मरुत ॥

परी तु प्रार्थन प्रगट दरगत की बेगीई रूप बनन।

सूरदास प्रभु बिन धरयोके रंग नाई न मरुत ॥

'प्यार' भाग उठा था और वे नंदनंदन का इतना दुलार कर सकी थी। गोपियों की श्रोकृष्ण में प्रेमाभक्ति थी और इस भक्ति की 'ध्वजा गोपिया ही मानी गई है।<sup>१</sup> गापियों ने श्री कृष्ण के साथ प्रेम का बड़ा सहज और समस्कारपूर्ण निर्वाह किया था।

ऐतिहासिक काल में, दक्षिण के घामवार सन्तो में से कई न प्रेमाभक्ति का प्रगट धारण किया और इस भक्ति ही का व्यंजना यानी रचनाओं में की। इनमें कुमरोत्तर घामवार एक गोवा या घाटाल के नाम उल्लेखनीय हैं। बारहवीं शती के लगभग दक्षिण में ही, लोलायुक्त ने श्रीकृष्ण-वर्णाश्रुत नामक ग्रन्थ की रचना की और उसमें गापियों के प्रेम का अत्यन्त सरस और ममप्राही वर्णन किया। लगभग इसी काल में, वङ्गाल में, गौतम-गाविन्द की रचना हुई। इसके बाद वंगाल के ही षण्डीदास ने राधा कृष्ण के श्रुद्धारमय प्रेम का विचार एवं समस्कारपूर्ण वर्णन अपनी रचनाओं में किया। पन्द्रहवीं शती में मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गाया।

भारतीय दर्शन प्रेमाभक्ति भक्तों के मन में रहने वाला एक और भाव है और उसका विकास शुद्ध 'भाव' की भाव भूमिका पर हुआ है। किन्तु भारतीय दर्शन शास्त्र में भावा के सम्यग् में यद्वत् कर्म ऊहा पाह मित्ती है जहाँ वहीं इनका उत्पन्न है वह इनकी हेयता प्रदर्शित

१ पात प्रेम की पुत्रा।

त्रिन मोरारण किए का करने उर बरि दनाम मुत्रा।

(परमानन्द दाम)



करने के लिये है। भावों को प्राध्यात्म चिन्तन में बाधक बतल  
 सवया दमनीय माना गया है। फिर भी भाव हमारे मन के  
 मौलिक अंग हैं और एक पाश्चात्य विद्वान के शब्दों में 'यह  
 सबसे बड़ा विरोधाभास है कि हम भावों का विश्वास तो  
 नहीं कर सकते किन्तु हमको सबसे बड़े सत्य इनके द्वारा ही  
 मातुम हात है'। हमारा मन बुक्तिया का समूह है। प्राध्यात्मिक  
 मनोव्यक्तियों ने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर मनोबुक्तिया  
 के तीन पहलु माने हैं—ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक।  
 इन तीनों पहलुओं का एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता—  
 ऐसा करने से मनाबुक्ति का स्वरूप नष्ट हो जाता है। किन्तु  
 मनुष्य के स्वभाव की रचनागत विभिन्नता के कारण किसी की  
 मनाबुक्तिया में ज्ञानात्मक पहलु का प्रधानता होता है किसी  
 में भावात्मक का। दार्शनिक और कवि इन दो प्रकार के बुक्तिया  
 के पुरान उदाहरण हैं। दार्शनिक जिस सत्य को बुद्धि के द्वारा  
 समझने की चेष्टा करता है कवि अपने भाव के द्वारा उसका  
 'उपभोग करता है। भाव ज्ञान से—जानने से—स्पष्टत भिन्न  
 यस्तु है। हमारे जानने के दो विषय हैं—वास्तव जगत और  
 प्रांतर जगत। हम जानने की क्रिया के द्वारा हम दोनों का ज्ञान  
 प्राप्त करते हैं। इससे विचरोति भावों के समय हमारी चेष्टा  
 कुछ जानने की नहीं होती। भाव का ता हम बचन अनुभव  
 करत हैं और यह अनुभव चाहे तीरे पर दो प्रकार का हाता है—  
 मूलमय और दुरमय। मूल-दुर का अनुभव भावा के द्वारा ही  
 हाता है। मूलमय के मन में भाव अद्वितीय सहज वाचना को

- 1) This is the greatest paradox. The emotions can not be trusted yet it is they that tell us the greatest truths.
- Don Herold

केन्द्र बनाकर उदित होते हैं तो उनके वेग में बहुत वृद्धि हो जाती है और कम से कम उतने काम के लिये तो वे सम्पूर्ण मन को अपना रंग में रंग भाँसते हैं—ज्ञान और क्रिया या उस समय, उनके अनुकूल ही घसते हैं। प्रेम भाव का ही उदाहरण नै तो प्रमोदय काम का ज्ञान स्पष्टतः मन की प्रेम विहीन स्थिति के ज्ञान से भिन्न होता है। प्रेम भाव में से सौंदर्य की एक लहर सी उठती है जो उस समय के सम्पूर्ण ज्ञान को सुन्दर बना देती है। यह लहर ही प्रेमी का कुम्भता में भी सौंदर्य का दर्शन कराती है। इसी प्रकार प्रेम भाव भी उदीप्त होकर सम्पूर्ण मन पर छा जाता है।

ज्ञान ज्ञान को रंजित कर देने की उनकी अद्भुत क्षमता के और कारण ही भावों को निरपेक्ष विद्युत् ज्ञान की प्राप्ति में भाव बाधक माना गया है। ज्ञान भाग की दृष्टि में भाव ही भव का कारण है और इनका दमन बिना भव भाव सम्भव नहीं है। यह दृष्टिकोण उन लोगों का है जिसकी मनोवृत्तियाँ ज्ञान प्रधान होती हैं। भाव प्रधान मन वाले लक्ष्मण सहज रूप से धर्म्यात्म तत्त्व के साथ भाव-सम्बन्ध ही जोड़ते हैं और भाव के मार्ग से ही उसको प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। यही भक्ति मार्ग कहलाता है। भक्ति का वर्णन करने वाले पुराणों और आगम ग्रंथों में भावों का भगवत् प्राप्ति के लिये पूर्ण समय माना गया है। श्रीमद् भगवत् में कहा गया है कि काम, क्रोध, भय, स्नेह सौहृद आदि भाव श्री हरि में नित्य लगाये जाय ता वे तन्मयता प्राप्त कराते हैं।<sup>१</sup> इसना ही नहीं

ग्रन्थ संहिता में यह ब्रह्मसाया गया है कि 'भक्त जिस भाव से भगवान का भजन करता है, वे उसके अनुकूल धारण धारण करके उसको दान देते हैं।'

भाव प्राचीन भक्ति ग्रन्थों में भाव का अनुमादन हासि ह्यु विवेचन भी उसके स्वरूप विवेचन का कोई सुगठित प्रयास नहीं दिखलाई देता। यह काय भरत के नाट्य शास्त्र में हुआ। भरत ने मनुष्य के मन के भाव स्थायी भावों का बहुत भावों में मनोबैज्ञानिक विवेचन किया है और नाट्य में विभाव आदि के समय से उनको रस रूप में परिणति प्रदर्शित की है। भक्ति के क्षेत्र में यह काय विक्रम का सामर्थ्य पाती के प्रतिम दशक में श्री का गोस्वामी द्वारा निष्पन्न हुआ। उन्होंने अपना भक्ति रसामृत सिन्धु में भरत के भाव विवेचन को आधार बना कर भक्ति भाव की एक निश्चित सरणि बनाई है और ग्रन्थ के आरम्भ में ही उत्तमा भक्ति का 'मान कर्मादि स भ्रनावृत्त ब्रह्मनाया है। 'भक्ति रसामृत सिन्धु की रचना शब्दाब्द १५६१ ( वि० सं० १५६८ ) में गुरुन में हुई है।<sup>१</sup> इसके सात वर्ष पूर्व सं० १५६१ में श्रीहित हरिबल गोस्वामी देववन से व्याकर बुद्धावन में बस रुक से और उन्होंने वहाँ प्रेमाभक्ति के एक नवान् सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर दिया था। लगभग एक हा कास में ब्रह्मदायन में प्रवर्तित होन वाले दोना सम्प्रदाय— श्री शतम्य सम्प्रदाय और राधायस्वन सम्प्रदाय—प्रेमाभक्ति को

१ ग्रन्थ संहिता—२२

२ शब्दाब्द शरु गणितने पाके गुरुन मयेदिने नापन् ।

भक्ति रसामृत सिन्धु विद्विष्टत सुर म्नेण ॥

सब अष्ट भक्ति मानते हैं। किन्तु जसा हम आये देखते इनका प्रेम सम्यग्धी दृष्टिकोण एक दूसरे से भिन्न है और रति का प्रधान विषय भा भिन्न है। राधाकन्तम सम्प्रदाय में भी घुड़ भाव की दृष्टि से भक्ति का विवेचन हुआ है। किन्तु इस सम्प्रदाय की भाव-पद्धति का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है, उसका भरत की पद्धति पर आधारित नहीं किया गया है।<sup>१</sup>

प्रेमभाव मनोवैज्ञानिक मनुष्य के मनमें उदय होने वाले सम्पूर्ण दृष्टिकोण भावों में प्रेम भाव का एक विशिष्ट स्थान माना जाता है मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे प्रेम मनुष्य के मन का एक मिश्र भाव (Complex sentiment) है जो उसकी सहज काम वृत्ति पर आधारित होता है। फ्रायड ने कामवृत्ति को कामतत्व (Libido) के रूप में उपस्थित किया है और उसका मनुष्य का सक्षम अधिभूत भौतिक तत्व उसका आवर्ती शक्ति-माना है। काम में शारीरिकता अधिभूत होता है और जीव विज्ञान की दृष्टि से उसका प्रधान उद्देश्य मृष्टि क्रिया को अवच्छिन्न बनाय रखना मात्र होता है। किन्तु काम के साथ जब अन्य धनुःस मानसिक तत्त्वा का सहयोग होता है तो वह प्रेम कहलाने लगता है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन मानसिक तत्त्वों के योग से काम वृत्ति का एक विधायक प्रकार का परिणाम ही प्रेम है।

प्रेम के निर्माण में अनेक भूत प्रवृत्तियाँ (Instincts) धारण पर आधारित करुणा उत्साह विनीतता सम्मिलित

१ विष्णु विवरण के लिए दिये गये एक वृत्तधीन दृष्टिकोण गोस्वामी सहाय और माहिर्य पृ० १६—१०८

साहचर्य आदि भावों का योग रहता है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रेम के घटक तत्वों को गिनाने की भी चेष्टा की है। ह्यूट स्पेन्सर ने प्रेम की रचना विभिन्न नौ तत्वों के योग से मानी है—वाम, सौन्दर्यविषय आसक्ति, आदर भाव प्रवृद्ध सहृदयता, प्रशंसन के प्रति रुचि आत्म-सम्मान स्वामित्व भावना और शोदाय। फिस्टर ( Pfister ) ने किसी सुष्टिदायक विषय के प्रति विषदा आश्चर्य और आत्म समर्पण को प्रेम कहा है। उन्होंने प्रेम के केवल दो तत्वों पर ही भर दिया है किन्तु ह्यूट स्पेन्सर के कई तत्व इन दो के अन्तर्गत हो जाते हैं।

शीघ्र हृदय मोक्षामी  
घोर  
प्रेमभाव

शीघ्र हृदय गांधामो प्रेम को  
मनुष्य के मन का एक ऐसा मधुर  
भाव मानते हैं जिसकी उत्पत्ति और  
स्थिति का अन्य को—विषय की—

अपेक्षा होती है। उनकी दृष्टि में प्रेमो घोर प्रेमभाव के बीच में रहने वाला उन दोनों का रागात्मक संबन्ध ही प्रेम है जिसका प्रकाशन उमने मिलन में हाता है—मिलन चाहे प्रयत्न हो या मानसिक। अपनी प्रेमोपासना का स्वरूप यत्नासे हुए श्री हिताशय न कहा है कि 'उमय रस सिन्धुधर्मो' (राधा-नाथ) क मिलन में जो शूङ्गार रूपी कामस विस रहा है उसका अवित्त मकरन्द का मैं अमर बनकर पान करता हूँ।<sup>१</sup> प्रेम की रचना

१ उमय शोषम सिन्धु सुरत पूरण बंधु

इवन मकरन्द हृदयं पति पाव ।

निये दो को—आशय और विषय की—नितान्त आश-  
यकता है।<sup>१</sup>

दैन्य भाव थी हित हरिवंश गोस्वामी ने प्रेम के एक ही तत्त्व  
‘दैन्य’ पर अधिक भार दिया है और वे इसे प्रेम  
का एक अत्यन्त मौलिक तत्त्व मानते हैं। प्रेम की निम्नतम  
स्थितियों से लेकर उसकी उच्चतम स्थितियों तक दैन्य की  
वैविध्य परिणतियाँ दिखालाई देती हैं। मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी  
भी प्रेमोन्मत्त कामोदय-काल में विनीत बनते देते जाते हैं। दैन्य  
विनीतता की इस मूल प्रवृत्ति (Instinct of Submission) पर  
ही आधारित है। इस ‘प्रवृत्ति’ से संबंधित भाव ‘मह का निये  
आत्मन भाव’ (Negative Self feeling) बतलाया गया  
है और यही दैन्य भाव है। पूरा दैन्य में मह का पूरा निषेध  
होता है। प्रमात्र वे प्रति आत्म समपण और ( अपने सुख को  
आपना छोड़कर ) उसके सुख की कामना आदि दैन्य की ही  
परिणतियाँ हैं। प्रेमी सर्वत्र धीन होता है और प्रेम की वृत्ति  
के साथ उसके सब नाम मह शून्य और सेवा भाव पूरा बनते

- १ श्री श्री गुरुदेव ने प्रीति और मुक्त का भेद बतलाते हुये प्रेम की  
उक्त मौलिक उभयात्मकता को उल्लिखित किया है। उन्होंने कहा है  
कि ‘मुक्त किंवा आदि उभयात्मक’ हाता है अतः उभयता केवल  
आशय होता है विषय नहीं होता इसी प्रकार मुक्त के प्रतिपक्षी  
दुःख का भी आशय हाता है विषय नहीं होता। किन्तु प्रीति का  
आशय भी होता है और विषय भी होता है। इसी प्रकार प्रीति के  
प्रतिपक्षी दुःख के भी यह दोनों होने हैं। अतएव प्रीति के अन्दर  
मुक्त एवम् विद्यमान हान हुए भी केवल मुक्त किंवा आशय ही  
बराबर वैशिष्ट्य है। प्रीति अर्थ—१?

जात है। प्रत्येक प्रकार के प्रेम-सम्बन्ध में दैन्य की परिणतियाँ विद्यमान रहती हैं और उनके ही आधार पर उन प्रेम सम्बन्धों का निर्वाह होता है। हिस बतुरासो में, इसीलिये, दैन्य का प्रीति की रीति कहा गया है।<sup>१</sup>

भक्ता का मनुष्य का प्रेम जब यहच्छास भगवान के साथ दैन्य लग जाता है तो उनके रूप की अनंत प्रेम-सौन्दर्य गरिमा प्रती के हृदय में उसके प्रति गौरव भाव प्राप्त कर देती है। यह भाव प्रती के अन्दर दैन्य की एक विशेष परिणति का उदय करता है जिसको भक्तों का दैन्य ही कहा जा सकता है। दैन्य का यह रूप उसके अन्य रूपों से विलक्षण होता है। इसके द्वारा प्रती और प्रेमपात्र में उपास्य उपासक भवना स्वामी-सेवक का अविचल सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। गौरव-भाव युक्त प्रेम ही प्रेमाभक्ति कहलाता है और इस भक्ति के पाँचाँ प्रसिद्ध रसों-शोभ, दास्य सत्य वात्सल्य और उज्वल—में स्वामी-सेवक भाव अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहता है और वही प्रेम को भक्ति बनाय रखता है। किन्तु प्रेमाभक्ति के सब व्यापार प्रेम के निर्मूलन में समते हैं और स्वामी-सेवक सम्बन्ध भी प्रेम के सहज प्रवाह में पड़कर, यही सम्भ्रम धूंग्य बन जाता है।

मनोविज्ञान और पाश्चात्य ज्ञान के कतिपय प्रसिद्ध मनोवशा  
 भाषिक भाषा निर्दो—डाक्टर स्टाबक सूवा विलियम जम्स  
 आदि—न भक्ता के मनोविज्ञान का अध्ययन

१ प्रीति का रीति रीतिज्ञान ।

अर्थात् सत्स सात बुद्धिमणि रीति ज्ञानयो मा ।। (हि प ४१)

करने की चेष्टा की है और इसके लिए उन्होंने प्रसिद्ध ईसाई मक्ता की जीवनधारा एवं उनके धार्मिक अनुभवा की आधार बताया है। इन विद्वानों के अनुसार मनुष्य के धर्म धार्मिक भाव जसा कोई स्वतंत्र मनाभाव नहीं है। मनुष्य के सहज प्रेम भय आदि भाव ही भगवत्त्व से सम्बन्धित हाकर-भगवान् विषयक बनकर—'धार्मिक भाव बिना भक्ति बन जाते हैं और उनका रूप एक प्रभाव में एक स्पष्ट विनिष्टता आ जाती है। भगवत्त्व की धर्म रूपता और मक्ता की स्वभावगत विलक्षणताओं के कारण धार्मिक भावा के धर्म रूप बन जाते हैं और इसीलिए भगवद्-भाव का पूरा वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं समता।'

हिन्दी में जबसे कृष्ण भक्ति काव्य का विषय अध्ययन भक्तिग्रन्थ आरम्भ हुआ है धर्म विद्वानों ने प्रेमा भक्ति-रूप और का समझने की चेष्टा की है। कुछ सागा ने 'मनोविज्ञान गौड़ाय भक्ति रस ग्रन्थों के आधार में समझ है धर्म ने उसे मतावेज्ञानिक दृष्टि में समझ का प्रयास किया है। भक्ति रस ग्रन्थों में ही हुई प्रेमा भक्ति की रचना परिवर्ती द्वितीय प्रकार के विद्वानों को समतावेज्ञानिक और

- 1 'The pretension under such conditions, to be regourousiy scientific or exact' in our term, would only stamp us as lacking in understanding of our task.

W James The varieties of Religious Experience



असंगत प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए वत्सल भक्ति-रस ही ल सोजिए। बड़ों का छोटों पर वात्सल्य होता है और छोटों की बड़ों पर भक्ति होती है। ये दोनों एक दूसरे से विरोधी भाव हैं और एक साथ नहीं रह सकते। वत्सल भक्ति रस में इन दोनों भावों का एक साथ रहना स्पष्ट असंगत है।

देखने में यह पक्ष ठीक मानूम देता है किन्तु काव्य रस के लिए जिस प्रकार एकमात्र सहृदय ही प्रमाण माना जाता है उसी प्रकार भक्ति रस के लिए सहृदय भक्त बिना रसिक भक्त को ही प्रमाण मानना चाहिए। इस रस का उन्होंने ही आस्वाद किया है और उन्होंने ही अपनी रचनाओं में इसे आस्वादीय बनाया है। मूरदासजी वत्सल रस के सबसे बड़े गायक हैं। श्रीकृष्ण की बाल-बेलि का वरुण म उन्होंने अपनी वत्सल रसि के सहारे ही किया है। किन्तु इस बात का वे एक क्षण के लिए भी नहीं भूलते कि वे अपने 'प्रभु' 'ठाकुर' अथवा 'स्वामी' की सीला गारहे हैं। विभिन्न बात यह है कि उनका इन दोनों भावों वात्सल्य और वात्सल्य-भ सम्प रहने में कोई असंगति नहीं लगती। ऐसा क्यों होता है? श्रीकृष्णदास कविराज कहते हैं कि कृष्ण प्रेम का यह एक अपूर्व प्रभाव है जिसके द्वारा गुरु और लघु दोनों का वात्सल्य भावोपसन्न बन जाता है। प्रेमी भक्त के हृदय में जब अपने आराध्य के प्रति वत्सल भाव का उदय होता है तो स्वाभावतः उसने अन्दर मुग्धा का भाव आपत हो जाता है किन्तु भक्त का सहृदय वैश्य एवं लज्जनित दासभाव जसा हम

१ कृष्ण प्रेम ही एक अपूर्व प्रभाव ।

पुरुष सम लघु के भाव दास भाव ॥

अर कह चुके हैं, किसी भी स्थिति में विन्युक्त नहीं होते और उसके हृदय में वात्सल्य रस के साथ प्रविष्ट रूप में रहे पाते हैं। इसीलिए तो सुरदास जी के बाल क्रीडा के पदों से, उनमें वात्सल्य भाव के रहते हुए भी, वात्सल्य रस की व्युत्पत्ति हो जाती है। भक्ति का सहज दैन्य इन पदों के वात्सल्य को एक विधिष्ट रूप तो प्रदान करता है किन्तु रमानुभव में बाधक नहीं बनता।

प्रमा भक्ति की रचना में आत्मस्वन का बड़ा गहरा प्रभाव हाता है। भगवान से सम्बन्धित होते ही प्रेम क्रुद्ध का क्रुद्ध बन जाता है। आत्मस्वन के प्रदुत्त प्रभाव के कारण ही उज्वल भक्ति रस, पूरा रूप से शृङ्गार रस होने हुए भी काम भावक माना जाता है। श्रीमद्भागवत में ब्रह्म-वन्दुओं के साथ विष्णु की काम-क्रीडा का अद्वैतान्वित बचन-अवर्ण हृद्दोग भावक बतसाया गया है।<sup>१</sup> हित चतुरामो की फलस्तुति में उसे 'काम पावक काँ पानी' कहा गया है। शृङ्गार रस की यह प्रदुत्त परिणति आत्मस्वन की प्रदुत्तता के कारण ही घटित होती है।

श्रीभैरव्य सम्प्रदाय में श्री चतुर्थ सम्प्रदाय में विष्णु पुराण<sup>२</sup> के आधार पर भगवान को तीन स्व रूप-शक्तियाँ मानी जाती हैं—ज्ञादिनी, संधिनी और सन्धिनी। इनमें स ज्ञादिनी शक्ति के द्वारा भगवान्

१ श्रीमद् भाव० १०-३३ ४०

२ ज्ञादिनी-संधिनी संधिनी रश्मि तथा सर्व संधिनी।  
ज्ञा-ज्ञानश्री-विद्या रश्मिनी पुण रश्मिनी ॥

कर जिसे हुए मन में हो प्रसाधारण गति का उदय होता है।  
 इसी प्रकार मन में रहने वास प्र म को भी दो स्थितियाँ हाती  
 हैं—साधारण और प्रसाधारण किन्वा लौकिक और अलौकिक।  
 प्र म के ये दोनों प्रकार एक दूसरे से भिन्न होते हैं किन्तु जहाँ  
 एक प्र म को प्रकृति का सम्बन्ध है वह दोनों म एक ही दिग्  
 साईं देती है और इसीलिये लौकिक प्र म की परिपाटी में जहाँ  
 सही याड़ा परिवर्तन कर देने से वह भगवत् प्र म के वर्णन क  
 उपयुक्त बन जाती है। श्रीरूप गोस्वामी ने इसी आधार पर  
 भरत की नाट्यरस पद्धति का यत्र-तत्र संस्कार करके उस भक्ति  
 रस के कथन के योग्य बना लिया है। वास्तव में भगवत्-प्र म  
 और लौकिक प्र म एक ही प्र म-तत्त्व को दो भिन्न धटायें  
 हैं उसी प्रकार जैसे पारमार्थिक ज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान  
 एक ही ज्ञान की दामिन्न स्थितियाँ हैं।

श्री हिताचार्य ने प्रेम को इस एक धर्म और  
 परापर तत्त्व व्यापक सत्ता पर अपने रस-सिद्धान्त का सङ्ग  
 प्र म किया है। मेवक जी के शब्दों में जा रस रीति  
 सबसे दूर है उसी को श्रीहित हरिबंश न सार  
 विश्व में भरपूर माना है और उसी को समीचन जड़ी बताया  
 है।<sup>१</sup> वे प्र म को परात्पर तत्त्वमानते हैं और प्र म शब्द के  
 अपर पर्याय 'हित' शब्द को उन्होंने अपने नाम के साथ संयुक्त  
 किया है। प्र मी में जब अपने से बाहर निकलकर प्र मयात्र क

१ जो रस रीति नवन तं द्विति—गो नव विश्व र्ही मन्वृति ।

—मूरि नवीचन कति र्द ॥

हित का विचार उदित हासा है तभी उसका प्रेम म उज्वलता प्राप्ती है और वह प्रेम कहने योग्य बनता है। पूरा हित मय प्रेम ही पूरा प्रेम है। प्रेम शब्द व्यापक है उसमें प्रेम क नीचे ऊँचे समा रूप आ जाते हैं, हित शब्द स प्रेम की कबल उष्व प्रमपात्र-सुखक तात्पर्यमयी स्थिति का ही भाव होता है।

पुसंतम श्री हित हरिचन्द्र मोस्वामी प्रेम क्रिया हित क प्रेम उपासक हैं। वे जसा हन जार देख चुके हैं प्रेम को मन की आश्रय-विषयारमरु क्रिया युगसारमक वृत्ति मानते हैं अत उनकी प्रमोपासना का अर्थ युगल की—प्रेम को प्रगट करने वाले उसका आश्रय और विषय को—उपासना है। श्री हितानाय का उपास्य प्रेम पूरातम प्रेम है। श्री ध्रुवदास ने 'पूरा कसा वाले प्रेम-बन्ध' के यह सक्षण बताय हैं। यह अत्यन्त उज्वल, निर्मल, सरस स्निग्ध और सहज रूप से सुकोमल होता है। उसमें मधुर मादकता पूर्ण माधुर्य क सम्पूर्ण अंग जगमगाते रहते हैं और अत्यन्त दुर्लभ भाव-तरंग उठत रहते हैं। यह दाय-क्षय में नबोन बनने वाला एक रस अत्यन्त अनुपम और सहज स्वधन्व होता है। उसमें प्रेम की रुचि कभी घटती नहीं है और वह सम्पूर्णतया तत्सुख मय होता है।<sup>१</sup> इसके तटस्थ सक्षणों का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है।

- १ जहाँ सगि उज्वल निर्मलताई सरस मनिग्ध सहज मृदुताई ।  
मादक मधुर माधुरी अंगा दुर्लभता के उठत तरमा ॥  
शुतन निग्ध प्लिहि प्लिन माहीं एक रस रहन घटन रुचि माहीं ।  
अविहि अत्राम सहज मुपेदा दूरन कना प्रेम कर कदा ॥

( नेहमंत्रगी १६०—१४३ )

‘इस प्रेम का जोय जिस प्रेमो के हृदय में उत्पन्न हुआ जाता है उसकी विषय वासना नष्ट हो जाती है। उसके मन की चञ्चलता दूर हो जाती है। प्रेम का अद्भुत छटा पर वह अपने मन-मन प्राण श्योछावर कर देता है और मनो बुरी किसी बात का चिन्तन नहीं करता। वह निस्पृह और विदेह बन जाता है। उसको प्रेम रखनी कुमारी बड़ जखी है। उसके मन सदब प्रमाथ्य पूर्ण बने रहने हैं और उसकी वाणी शक्ति हो जाती है।

इस पूणतम प्रेम का पूण एक एक रस निर्वाह करने वाला उसके सब श्रेष्ठ विषय और आश्रय श्री राधा और श्याम सुन्दर हैं। यह दोनों प्रेम-स्वरूप हैं और प्रेम के ही धनाद्यन्त आस्वाद में रत हैं। प्रेम की उपासना वास्तव में प्रेमो की उपासना है और भी हितशायन पूण प्रेमो की उपासना के लिये इन दोनों पूण प्रेमिया का अपना उपास्य बनाया है।

मुगलात्मक परतत्व के युगसात्मक होने की मान्यता अपने परतत्व यहाँ आरम्भ से ही बसी आ रही है और इसके प्रमाण प्राचीन उपनिषदों में देने के स्वलों पर मिलते हैं। उदाहरण के लिये बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है वह आरम्भ में इस प्रकार स्थित था जैसे गाड़ आसिगन में आवद्ध स्त्रो-गुरुप होने हैं। इस स्थिति में रमण का-सीता का अशकाद नहीं था घट उसने अपने आणको दो भागों में विभक्त कर लिया और पति-पत्नी बन गया।’ स्पष्ट परतत्व का

१ स ब न क रे मे तस्पादेवा की न रमते स द्वितीयमथयत् स हैतावाताम यथा की पुमा सी म्परिप्रायो स इयमेवात्मान इ पा वागयाताम परितरव पत्नी आनरताम् । १३ बभुर्षं वासुपुत्रम् १

इस प्रकार का दर्शन भाव के मार्ग से हुआ है। भावपूर्ण नत्रों ने ही उसको पति-पत्नी के मिलित रूप में देखा है। पति-पत्नी प्रथम भाव के द्वारा दो से एक बनते हैं और प्रेमास्वाद के लिये रमण के लिये एक रहते हुए दो बन रहते हैं। प्रथम के अतिरिक्त पति-पत्नी को इस स्थिति में रखने का अर्थ कोई स्वाभाविक मांग नहीं है।

इस प्रकार की श्रुतियाँ के अतिरिक्त, उपनिषदों में कुछ श्रुतियाँ ऐसी मिलती हैं जो परतत्त्व को अक्षिप्तान के रूप में उपस्थित करती हैं। श्वेताश्वतर की प्रसिद्ध श्रुति में परतत्त्व की तीन पराशक्तियों—ज्ञान क्रिया और बल—का उल्लेख किया गया है।<sup>१</sup>

भाव प्रधान और पृथक् पृथक् एवं तन्त्रा में परतत्त्व का युगलात्मक ज्ञान प्रधान मानकर जब दार्शनिक सिद्धान्ता एवं साधन श्रुतियाँ पद्धतियों की रचना हुई तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें प्रथम प्रकार की श्रुतियाँ में निर्देशित पति-पत्नी को द्वितीय प्रकार की श्रुतियाँ के आधार पर अक्षिप्तान मान लिया गया और दोनों प्रकार का श्रुतियाँ का उन्मुख्य कर लिया गया। किन्तु मनावैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर यह मानना प्रयोग का श्रुतियाँ मन की दो प्रकार की वस्तुओं पर आधारित माना जा सकता है। प्रथम प्रकार की श्रुतियाँ का उद्गम भाव प्रधान वस्तुओं से हुआ है और द्वितीय प्रकार की श्रुतियाँ का ज्ञान प्रधान वस्तुओं से। प्रथम श्रेणी की श्रुतियाँ के अर्थ भाव प्रधान हैं और द्वितीय श्रेणी की श्रुतियाँ

१ पराशक्त्योः अक्षिप्तानि च श्रुतौ स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।

के ज्ञान-प्रधान । इन दोनों दृष्टियों का समन्वय किया जा सकता है किन्तु इसमें क्षति दोनों को उठानी पड़ेगी है । भाव के क्षेत्र में शक्ति-शक्तिमान् जैसा कोई सम्बन्ध नहीं है और ज्ञान के क्षेत्र में पति-पत्नी जसा ।

यह हो सकता है कि दो व्यक्ति पति-पत्नी होने के प्रति रिक्त परस्पर शक्ति-शक्तिमान् प्रथवा प्रवृत्ति-मुख्य प्रथवा प्रथम कृष्ण भी हो किन्तु प्रेम भाव का सम्बन्ध केवल उनके पति-पत्नी रूप के साथ है अन्य किसी रूप से नहीं । प्रेम की दृष्टि में उनके अन्य सब रूप विजातीय हैं । प्रेम के क्षेत्र में इनका आने से गड़बड़ ही मचेगी कोई लाभ नहीं होगा । इसमें न शक्ति-शक्तिमान् रूप हो कुछ रूप में रह सकेगा और न पति-पत्नी रूप ही ।

पुराणों और तन्त्रों के आधार पर सोलहवीं शताब्दी में जब प्रमाशक्ति के दो मन्त्रों मप्रदायो-बल्लभ और वैश्वानर—की स्थापना हुई तो उनमें भी युगल शक्ति-शक्तिमान् के रूप में ही गृहीत हुए । साथ ही इन सम्प्रदायों ने युगल को प्रम-रूप कृष्ण रस-रूप में भी रखा एवं उनको प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रम को ही बताया । इनमें प्रम भाव एवं शक्ति शक्तिमान् की योजना का समन्वय होना ही था और उसका अनुसार जैसा हम ऊपर देखा चुके हैं प्रम का भगवान की विदाय शक्ति शक्तिमान् का परिणाम माना गया और इस प्रकार प्रमभाव और शक्ति शक्तिमान् मान लिये गए । किन्तु हम जिन वाच्युषों को शक्ति और भाव कहते हैं वे सब प्रम न स्पष्ट शक्ति हैं । प्रमभाव मन का एक विचार है शक्ति हमारी क्रियात्मकता का नाम है । यदि क्रियात्मकता का क्षेत्र न स्पष्ट बनाकर भाव को उगरी परिधि में ले लिया

जब तब भी इतना ही स्पष्ट है कि भाव केवल क्रिया नहीं है उससे विलक्षण भी कुछ है और उसकी यह विलक्षणता ही उसका रूप है, विशेषता है। भावोदय काल में ज्ञान और उसकी क्रिया दोनों ही भाव के रंग में रंगकर उसके अनुपर धनते दिख साईं देते हैं।

श्रीहित हरिवंश न मुगल को केवल पति-पत्नी रूप में देखा है। उनका शोकपूर्ण चित्तमान् नहीं है। उनकी शीराभा शक्ति नहीं है। वे केवल प्रमी और प्रमपान हैं और सहज दाम्पत्य सम्बन्ध में घावय हैं। उनमें प्रेम-सम्बन्ध के प्रतिरिक्त प्रप कोई सम्बन्ध नहीं है प्रम-स्यक्तता से भिन्न कोई रूप नहीं है और शृङ्गारमयी प्रेम-कोडा के प्रतिरिक्त अन्य कोई लीला नहीं है। यह मुगल अपना धनत रूप प्रम का नित्य मूतन धाम्बान करते रहते हैं। य लीला प्रम के लिसीने है और प्रेम

- 
- १ धादि न पान विनाय करे होउ मान प्रिया में भई न बिहाये ।  
 नई नई भनि नई छवि नानि नई नयना नबनेहु बिहाये ॥
- २४ मुग चाहि विष बिन चाहि पर रम प्रति मु मर्षमु हारये ।
- २५ इह गाव कर मृदु हाग मुनीप्र व प्रम अकम्ब कपाये ॥

(श्रीप्रबुधराम भजन विभारमन  
 शृतीय शृङ्गारा)



ना ही खेल खेल रहे हैं ।<sup>१</sup>

श्री राधा दयामसुन्दर में प्रेम जानित क्रिया एवं ज्ञान के प्रतिरिक्त प्रत्यक्ष किसी क्रिया प्रभवा ज्ञान का प्रवकाश नहीं है । इन दोनों का प्रेम उभर स्थिति का है जहाँ प्रमानुभव के प्रतिरिक्त प्रत्यक्ष कोई अनुभव नहीं रहता । मृष्टि-रचना, अनुग्रह-निष्ठादि भगवत् काय उनका इस प्रकार प्रम-स्थिति का स्पष्ट नहीं करते । प्रमभाव की इस एकान्त स्थिति की तुलना कुछ अशा में ज्ञान की उस स्थिति के साथ की जा सकती है जहाँ सर्व भेद धून्य एक मात्र ज्ञान प्रवशिष्ट रह जाता है और उसका कोई सीमा सम्बन्ध मृष्टि रचना आदि के साथ नहीं होता । यह ज्ञान की निगुण एक एकान्त स्थिति है । प्रमभाव की निगुण स्थिति तो संभव नहीं है क्योंकि बहु नित्य सगुण पर्याय है । किन्तु उसकी एकान्त स्थिति संभव है और उसका दयान 'हित चौरासी' में वर्णित निरय प्रम-विहार में होता है ।

२ प्रेम के गिरीमा होऊ ममल है प्रेम मेम

प्रम पूव वृत्ति मी प्रम सेव रही है ।

प्रम ही की निरवनि मुक्तिरनि प्रम ही की

प्रम रगी दान करे, प्रम केनि बची है ॥

प्रम के तरकूनि में प्रीतम परे है होऊ

प्रम प्यार भार प्यारी निप हिय लकी है ।

हित प्रप प्रम भगी प्यार। मभा केने मरी

हित पितबनि एनि धानि उर मची है ॥

(भा प्रपशम भजन निगारकठ कृतीय श्रुदगा)

युगल का एकान्त प्रेम स्वरूप युगल का शक्ति-शक्तिमान रूप उनके उक्त एकान्त प्रेम स्वरूप से भिन्न है। इस रूप का सम्बन्ध सृष्टि-रचना आदि कार्यों के साथ है और यही यह स्वयं पूर्ण भगवत् स्वरूप है। किन्तु युगल का प्रेम स्वरूपता उनके सब रूपों में धनस्यूत रहती है और जिन रूपों में वह अधिक उद्भासित हुई है वे प्रती भक्ता द्वारा सदा बदनीय और आस्वादीय रहे हैं। श्री हितोपाय के लिये युगल के सब रूप और उनकी सब लीलाये बदनीय हैं किन्तु आस्वादीय युगल का एकान्त प्रेम स्वरूप ही है।

यह एकान्त प्रेम विहारी राधा श्यामसुन्दर परमाद्भुत प्रेम सौन्दर्य और गुणों के धाम हैं। इनके प्रेम को आधुनिकों ने और ही भाँति का बतसाया है। प्रेम का यह प्रकार नहीं दिखलाई नहीं देता। उदाहरण के लिये शृङ्गार के दो भेद समाग और विप्रसम्भ—प्रसिद्ध हैं। भक्ति रस बाध्या में भराया कृष्ण की दो प्रकार को सोसाया का बल न किया गया है। किन्तु इन युगल का प्रेम इस प्रकार का है कि उसमें स्युत बिच्छु का प्रवकाश नहीं है। इस प्रेम में परस्पर आसक्ति इतनी बढ़ी हुई है कि श्री राधा श्यामसुन्दर एक दाएँ के लिये भी एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। 'यह दोनों परस्पर प्रसों पर मुग्धा रख हुए एक दूसरे के मुख चन्द्र को और एक टा देखते रहते हैं और उनके रस मत्त मानन, तृपित चकोरा क भाँति परस्पर रूप-भाणुरी का पान करन रहत हैं।'<sup>१</sup> ऐ

१ अमन पर मुत्र दिव्ये बिलोचन इ दु बरन बिबि धोर ।

बल पान रमत्त परस्पर मोचन तृपित चकोर ॥

(हि० बी० ३१)

प्रेमियों के बीच में म्यूस विरह की कल्पना भी भय जनक है—  
 'प्रम हू कौ विरह कहत जहाँ बर भाव ।'

फिर भी मुगल का प्रेम एक पक्षीय नहीं है, उसमें शू गार के उक्त दोनों पक्ष सहज रूप से विद्यमान हैं । किन्तु वहाँ म्यूस संयोग और विरह की भाँति मिला कासा में अनुभूत नहीं होते, एक काममें ही अनुभूत हात रहते हैं । श्री राधा स्वामन्दर विरह की तीव्र प्रेम सृष्टा मकर अपने अक्षिपल संयोग का आस्वाद करते रहते हैं । 'जिस प्रेम में देखना ही विरह के समान विकस और धर्म है। वहाँ के प्रेम को बात कोई क्या कहे ।' 'मुगल नेत्र भर भर कर एक दूधरे की धार देगते रहते हैं और कभी अपने को समुक्त नहीं मानते ।'

पूर्णतम प्रेम व एकाउ भाष्य होने के कारण यह दोनों पूर्ण सम सौम्य के भी धनय भाव हैं । सौन्दर्य की सब बसायें—  
 नृत्य, संगीत आदि—भी इनमें पूरा रूप में विद्यमान हैं । 'इसके अत्यन्त लावण्य रूप और अभिनय गुणों की समता काटि कामदेव भी महीं कर सन्ते ।' 'जब मुन्दरी राधा और हरि मिसकर घमार (वसंत राग) गाते हैं तो खग मृग पुसकित हो

१ श्रीधु बदास

२ बेदिबी जहाँ विरह नम होई ।

तहाँ की प्रेम बहा बई कोई ॥

३ बबहु सँजोम न मानहीं बगत भरि भरि नन ।

४ धति लावण्य बर अभिनय गुन नाहिन कोटि काम समभूत ।

(हिं बी १२)

जासे हैं और जल का बहना बंद हो जाता है ।<sup>१</sup> जब यह दोनों गौरी राय का प्रसाप चागी बग्त हुये सहज रूप से धपने बड़े बड़ नेत्रा का ऊपर का धार उठा कर भृकुटि धनुष पर दवाते हैं तो उनकी यह नय-छाया मन रूपी मृग का बल पूवक वेधन कर बेती है ।<sup>२</sup>

राधा श्याम सुन्दर नित्य द्यति हैं । इनकी मित्यता का अर्थ नित्य नवीन होना है । इसीलिये, इनका नेह नित्य नया है राग रंग नया है धार स्वर्ग ये भा नित्य लये हैं ।<sup>३</sup> इन सम्पूर्ण नवीनताओं को लेकर ये धपने नित्य दाम्पत्य का नित्य नवीन-प्रास्वाद करते रहते हैं ।

श्री हित हरिवंश शास्त्रामो ने मुगल को समान प्रेमी एवं समान सौंदर्य-गुण वाली चित्रित किया है । इनके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि कीन की प्रीति किससे अधिक है । पिय-भागी में प्रेम की समान 'मति फूल' (प्रत्यन्त फूलन) है ।<sup>४</sup> सौंदर्य और गुण भी इनके समान हैं । 'छबीले श्याम सुन्दर मर्कत मणि है और श्री राधा

१ वाक्य मु हरि हरि सरम प्रभारि-मुनकित अग मृग बहते न बारि ।  
(हि० अ० २७)

२ शोक मिति चापर गावन गौरी राय प्रसापि ।  
मानस मृग बल बधत भृकुटि धनुष हय चापि ॥ ( हि अ २७ )

३ नयी बेह नवरंग नयी रस नवल श्याम कृपमानु विमोरी ।  
[हि अ २४]

४ हृदय धति फूल गमनून पिय भागीरी  
हरिनि-हरि मन प्रती विविध मुन रागिनी । [हि अ ४६]

कचन गाठ है । धी हित हरिवंश का आरो ( युगल ) एक दूसरे के गुण गुण से माठ है—पराजित है ।

इन दोनों की एक ही मय पसर वय है, एक ही रजि है, एक सा स्वभाव है । यह सर्वस गौर हस-हसिनी अस घोर तरंग की भाँति एक होने हुए भी उन्हा के समान सदय दो बने रहते हैं । यह दोनों शृङ्गार की विमलसतम मूर्ति हैं । इनके शृङ्गार में प्रेम (रति) इतनी उज्ज्वल और मांगमिष स्थिति में रहता है कि लौकिक शृङ्गार को बसान बास कोटि-काटि कामदेव उसको देखकर लज्जित हो जात है । इस शृङ्गार की एक छटा मात्र रसिकों के हृदय में सहज प्रेम और सौंदर्य का धनायरण कर देती है । इसीसिये श्री हिताबाय ने इस शृङ्गार रसमयी मनी का जगत पावनी कहा है ।<sup>१</sup>

धीकृष्ण भारतीय घम और साहित्य में धीकृष्ण के दान मुख्यतः दो रूपों में होते हैं । एक महाभारत में बर्णित साक नायक लोक धाम्ना रूप दूसरा पुराणों में निहित प्रेम स्वरूप । ये दाना रूप भक्ति के धाम्बन धनत धाय है—ज्ञान कम मिथित भक्ति का लोक नायक रूप और शुद्ध भक्ति किवा प्रेमाभक्ति का प्रेम स्वरूप । श्रीकृष्ण का लोक नायक रूप बहुत दूर तक इतिहासिकता में धायठ है और उसमें धनता की भावना का उन्मुक्त बिहार का धवनाग मही मिसा है । श्रीकृष्ण का प्रेम स्वरूप शुद्ध भाव गेय की वस्तु है और प्रेमा भक्ता ने धामा धनत विष भाव दृष्टिया का सकर धीकृष्ण के रंग रूप का यद्वा विनाद धास्व न किया है ।

<sup>१</sup> बनी धीहित लज्जित जोरी उयम युग रज माठ । [ हि जी २८ ]  
गौरल रम रूप मनी जगत पावनी । [ हि जी ११ ]

श्रीकृष्ण की प्रेम स्वरूपता का प्रकाश उनकी व्रज लीलाओं में हुआ था। मध्य युगीन कृष्ण भक्तों ने व्रज वनों के श्रीकृष्ण से सम्बन्धित प्रमानुभव को अपने अनुभव पर्यन्त मिलाकर अपनी रचनाओं में उसका गान किया। उसी समय श्री हित हरिबन्ध गास्वामी ने श्री राधा की प्रमानता का लेकर व्रज लीलाओं के समानांतर निकुञ्ज लीलाओं का प्रवर्तन किया। इन लीलाओं में श्रीकृष्ण की प्रेमस्वरूपता की एक नई छटा सामने आई। व्रज लीलाओं में वे सब गापीजनता के अनन्य प्रेम पात्र हैं निकुञ्ज लीलाओं में वे श्री राधा के अनन्य प्रेम प्रमात्र ही श्री राधा हैं। धामद्वैतभाव में वर्णित श्रीकृष्ण लीलाओं में प्रेम के विषय श्रीकृष्ण हैं और गोपीजन उसका प्राथम्य हैं। वहाँ प्रेमिया की विभिन्न दशाओं में गापीजनों में दिखाई गई हैं। निकुञ्ज लीलाओं में विरय श्री राधा हैं और प्राथम्य श्रीकृष्ण। हित चौरासा में श्रीकृष्ण प्राथम्य—प्रमी—रूप में वर्णित हुए हैं।

प्रेमियों की एक स्थायी भावना उनकी दीनता है। व्रज लीलाओं में प्रेमी होने के नाते गापियाँ सहज रूप से दीन हैं। निकुञ्ज लीलाओं में यही स्थिति श्याम मुन्दर की है। वे सहज साकेत बुद्धिमार्ग हाकर भी अपने को दीन मानती हैं। उनकी दीन बनाने वाला उनकी प्रेम विदग्धता है। प्रेम विदग्ध बनकर उनकी अपने सम्बन्धित सब कुछ बिस्मृत हो गया है और वे अनन्य मति बन गई हैं। यमुना पृथ्वी के निकुञ्ज भवन में जब श्री राधा मान ठानती हैं तो काटि कापिनि कुल के निकट रहने हुए मायासमुन्दर का घोरज नहीं घेंघता। श्री ज्ञानाशायन कहा है कि अपने के माय का जान बानी प्रीति अपने मधुकर के मेह के समान नंबर होता है। प्रीति का अनुचिन स्थिति—

मर्यादा—को छोड़कर जा दयामसुन्दर के अनन्य प्रती रूप को पहिचानता है वही चतुर है ।<sup>१</sup>

एकांत प्रेम बीधिया में विधरणा करन बाल दयामसुन्दर का प्रेम अत्यन्त प्रसूत है । उनका घोर श्री राधा का सम्बन्ध भीन घोर जल जसा है, व उनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते । उनके भेदो की यह सामान्य स्थिति बन गई है कि श्री राधा के मुख कमल पर अमर की भाँति घटके रहत हैं अन्यत्र नहीं नहीं जात । जब पलकों के गिरन से दर्शन म एक क्षण भी भी बाधा उपस्थित होता है तो वे अत्यन्त घातुर होकर प्रकृताने लगने है घोर निमेष मात्र का अन्तर भी उनका सँकड़ा बन्धों के अन्तर म अधिक प्रसात हाता है । श्री राधा के सहज रूप-सीन्दर को देखकर उनका मन घनापास गतिहीन बन जाता है ।<sup>१०</sup> उनके भृङ्गुटि-विसास मन्द मुस्कान घोर हाव

१ मन्दर मठ बाल मधुकर ज्यो घाम-घान भी बाने ।

जय श्री हिन हरिबंस पुरु मोद मावहि छँदि मंड पहिबाने ।

{ दि बी ११ }

२ कहा वहाँ इन नैतनि की बात ।

य अमि प्रिया बदन प्रकृत रस घटव घनन म जात ।

जब-जब दहन पमरु मपु मट घनि घातुर घुलान ।

लपट मर निमेष घतर ल अन्त कन्तर मन-जात ॥ { दि बी ६ }

● इन वर्णन म श्री हिन हरिबंस ने मोक्ष की व्याख्या की है ।

'सुन्दर कह है प्रियाका देखकर मन को घनि पशु बन जाय बर

उममें हूँ जाय । आचार्य पुनन ने इगी व्याख्या को स्वीकार किया

है । उनके दर्शों व प्रिय बन्धु के प्रथम ज्ञान या ब्रह्मना से

कदाचित्-परिगुनि प्रियतो ही परिगु हगो, उगी भी व बन्धु

भाव का देखकर ताब अपनी मुष्-बुष् ला बटल हैं और उनकी उस समय की स्थिति को देखकर सखाजन करणा स घाफुल हा उट्यो है ।<sup>१</sup>

श्री व्याममुन्दर महन को मोहित करन वाले त्रिमयी हैं ।  
 शीतराग मुनियों क मन को भी ब व्याम रग में रँग डालत हैं ।  
 मुनियों का सघन परमानन्द ही उनक रूप में प्रगट हुआ है ।<sup>२</sup> ये  
 रसिक रस सागर हैं और अपन अनत प्रेम सौंदर्य का लकर समुना  
 पुसिन पर उट्ट सिक्त हात रहत हैं-रस विलास करत रहत हैं ।<sup>३</sup>  
 अपन अनन्य दासों क भजन की निष्पत्ति क निय यह सीसा नट

हमारे निय मुन्दर कहा जायगी । मुन्दर बन्धु को देखकर प्रत  
 मता की तबाकार-गरिगति मीन्दय की अनुमूर्ति है ।

- १ घब हो पंघु भई मन की गति बिनु उहिम प्रभिवाम ।  
 तब की कहा बगो अब निय प्रति चाहत मुहुटि बिनाम ॥  
 कच मत्रमन ध्याय मुख दरमन मुपिरति बहूत बिनाम ।  
 हा हरिबग अनोति यति हिन कत बाणत तन माम ॥

[ हि व २१ ]

- २ माह्न मन्त्र त्रिसंकी । माह्न मुनि मन रणी ।  
 माह्न मुनि मघन प्रमन् परमत्संर दून गर्भीर गुणाता ।

[ हि व २३ ]

- ३ पदुना पुसिन रसिक रस-नायक गम रघुवी बन महा ।

[ हि व २३ ]



प्रगट हुये हैं और निश्चित ब्रह्मांड में अपने यग का विष्णु परत रहते हैं।<sup>१</sup>

राधा बल्सभीय प्रम-सिद्धान्त में जैसा हम ऊपर देखे श्री राधा पुके हैं श्री राधा का एकांत प्रम स्वरूपा माना जाता है शक्ति प्रथवा प्रकृति नहीं माना जाता। किन्तु भारतीय मानस में ब्रह्मान्त के शक्ति शक्तिमान सांख्य के प्रकृति पुरुष के साथ एक बनकर ब्रह्ममूल होगए है और जहाँ-ही भी भगवद् तत्व का ग्रहण युगल रूप में हुआ है वही उनका बीच में उभरता वामा सम्बन्ध मान लिया गए हैं। शिव शक्ति और राधा कृष्ण दोनों युगलरूप भद्रम सत्व हैं और स्वभावतः बाना का वाह्य रूप मिलत जुसत आकारों में विकसित हुआ है। शक्ति और प्रकृति दोनों नारी तत्व माने जाते हैं और श्री राधा भी नारी हैं। इसी माते श्रीराधा के वर्णन में उन प्रवेश प्रतीक्षा का ग्रहण हुआ है जो शक्ति के वर्णन में भी प्रयुक्त दये जाते हैं।

उत्पाहरण के लिए हित श्रीराधो के कई पदों में राधा दयामसुन्दर का हृस हृसिनी कहा गया है। काशीर जीव वर्धन से सम्बन्धित एक ग्रन्थ में ब्रह्माण्ड त्रिभिगी शक्ति का परमेश्वर रूप हृस की हृसा बतसाया गया है।<sup>२</sup> यहाँ राधा कृष्ण और शिव-शक्ति को उज्वलता को रूप जित करने के लिए

१ काम धनम्य अन्नम रम काम हित हरिबंध प्रवट सीता गट ।

[ हि ५ (४) ]

शिव हृसिनीय बरत धरती जय प्रणम धनिग ब्रह्म इत ।

[ हि ५ (१) ]

२ ब्रह्माण्ड त्रिभिगी व्याम व्यापित मंत्रेण वा ।

परमेश्वर हृसव्य शक्ति हृसी शिव म्युम ॥

एक विष्णुवर्णन भीय काशीर उचित का सं १ ।

हस-हसी के प्रतीक व्यषट्कार में लाय गय हैं। किन्तु हित श्रीरासा में व अहाँ उज्वल प्रेमरस की उज्वलता क प्रतीक हैं वहाँ स्तव चिन्तामणि में शृद्ध सत्व की। अतः प्रतीका अथवा बाह्य आचार की समानता के आधार पर सदैव वस्तु की समानता सिद्ध नहीं होती।

राधाकृष्ण उपासका एव शक्ति उपासका के उपास्य तत्व एक दूसरे से भिन्न हैं। एक अगह उपास्य शक्ति है दूसरी अगह प्रेम। यह दाना एक ही परम रहस्यमय तत्वके आवरणक अङ्ग हैं और पूर्ण के अङ्ग हाने के नात अवन आय में पूर्ण हैं। किन्तु शक्ति अर प्र म भाव एक दूसरे से विसक्षण पदाय है यह हम ऊपर दक्ष बुके हैं। इनकी उपासना प्रणामी भा एक दूसरे से भिन्न है। शक्ति की उपासना सांख्यिक पद्धति से होती है और प्रेम स्वरूप राधा-कृष्ण का अनुधीसन प्र म भाव क स्वामा-विक मार्ग से किया जाता है।

शैतन्य सम्प्रदाय में श्रीराधा का शक्ति माना जाता है किन्तु वे परम प्र म स्वरूप। अदिना शक्ति हैं। प्रेम का सार महाभाव बतलाया गया है और महाभाव का मूलरूप श्रीराधा हैं। अतः इनकी उपासना शृद्ध भाव के माग से ही होती है।<sup>१</sup>

१ राधावल्लभिय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य एवं बालीकार श्री रूपनाथ गारुडानी ( सं० १७३७—१८११ ) ने अवन कई पदों में श्री राधा की 'अदिनादिनी शक्ति' कहा है। उनके यशस्वी शिष्य आचार्य शिव गुरुदासनाथ ने भी श्री राधा की 'अदिनादिनी शक्ति' कहकर ही गाया है किन्तु यह दृष्टिकोण सम्प्रदाय में स्वीकृत नहीं हुआ। आचार्य के जीवन काल में ही रच जाने वाल गिडान्त ग्रन्थ 'पुष्पक बोधिनी' में इसका उल्लेख नहीं किया गया और इसके चौद

वल्सभ सम्प्रदाय में श्री मदभागवत<sup>१</sup> के आधार पर श्री राधा को भगवान की राधस्व सिद्धि माना जाता है।<sup>२</sup> यह सिद्धि निरन्तर साम्यासिद्धि है। इसके साथ भगवान अपने धाम में नित्य रमण करते रहते हैं। राधा कृष्ण की इसी परम प्रेमभरी साक्षत-कीड़ा का वर्णन अष्टछाप के भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है और इस सम्प्रदाय में उपासना भी प्रेमा भक्ति की प्रणाली से ही होती है।

यदि उक्त सम्प्रदायों एवं राधा बल्सभीय सम्प्रदाय को केवल बाहर से देखा जाय तो निस्सन्देह उन्नय और 'शाक्त सम्प्रदायों में कई बातों में समानताएँ दीसगी। इनका आधार पर उक्त सम्प्रदायों के ऊपर शाक्त प्रभाव दितनाया जा सकता है। एक अथ ज विद्वान् ने इन दोनों सम्प्रदायों और रामानुज सम्प्रदाय को 'वैष्णव शाक्त' कह दिया है।<sup>३</sup> राधा बल्सभीय सम्प्रदाय में श्रीराधा की प्रमानता है अतः अथ एव विद्वान् ने इस सम्प्रदाय को तो सीधा 'शाक्त ही पतला दिया है।<sup>४</sup>

धाहित हरिबंस गोस्वामी की दृष्टि में श्रीकृष्ण जैसे अद्भुत और अनन्य प्रमो के अगाध प्रेम का एक मात्र विषय

द्वि बार गोस्वामी रगीपाल जी ने अपने मस्तुन अथ 'द्विद्व सिद्धांत में श्रीराधा साक्षत होने का अर्थ पूर्ण रूप से कर दिया।

१ द्वि० अ० अ० ४ असाक १४।

२ द्विद्वि अक्षरणा क साक्षरक में द्वेवधि अ० श्री रमानाथ श्री मट्ट का 'श्रीकृष्ण की शक्ति श्री राधिका' तीव्र रूप से। पृष्ठ १५३।

३ The Hindu Religions of India A Barth, Page 236

४ The Religious Quest of India. J N Farquhar P 318

धीराधा हैं। ये प्रेम के सागर हैं, वे सौंदर्य की सीमा हैं। ये अपने असीम प्रेम के साथ अपार सौंदर्य लिए हुए हैं, वे अपने अपार सौंदर्य के साथ असीम प्रेम लिए हुये हैं। धीराधा का सौंदर्य अप्रतिम है इसीलिए उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। 'तीनों लोकों के कविकुल इस बनकर में हैं कि वे धीराधा के अङ्गों की सहज माधुरी को क्या कहकर समझायें। प्रत्येक वस्तु सुसना के द्वारा स्पष्ट होती है और धीराधा के सौंदर्य की कोई सुसना है नहीं। एक श्यामसुन्दर ऐसे हैं जिनके साथ धीराधा की सुसना की जा सकती है किन्तु वे उनके मृदुलि बिभास से बिबिध बनकर सर्वत्र भृगु के समान चकित्त बने रहते हैं।' 'ऐसी स्थिति में यदि कोई करोड़ों कल्पों तक जीता रहे और उसको करोड़ों जिह्वायें मिस जाय तो भी वह धीराधा के सुन्दर मुख कमल की शोभा का वर्णन नहीं कर सकता।'<sup>१</sup>

धीराधा के सहज सुन्दर अङ्ग बिना आभूषणों के भूषित हैं। वे नृत्य और संगीत की कलाओं में अत्यन्त कुशल हैं और 'श्लोक-संगीत-रस सिधु' में मानो हुआकर निकाली गई हैं। उन्होंने मोहन के अंजन और रसिक मन मधुप को अपनी कुक्षकार पर समेट रखा है और उनके चंचल नेत्रों को अपने विभिन्न सुन्दर अङ्गों के साथ बिबिध अंजन शेरियों से बांध रखा है।<sup>२</sup> एक ही साथ अनेक अणु अणु अणु के कारण श्यामसुन्दर के नेत्र सर्वत्र व्याप्त बने रहते हैं।

धीराधा भासी इतनी हैं कि श्याम सुन्दर की कीस्तु मणि में अपना प्रतिबिम्ब देखकर भ्रम में पड़ जाती हैं और मा-

१ हि जी ५२

२ हि जी ८२

कर बैठती है ।<sup>१</sup> और चतुर दत्तनी है कि उनके नृत्य में स्वर तास का अद्भुत चमत्कार दसहर मटवर श्यामसुन्दर प्राण्य से 'हो-हो' कह उठते हैं ।<sup>२</sup> व रूप में चतुरसा में, दोस में, गृ गार में और ृणों में सब प्रज्ञ सुन्दरियो स श्रु हैं ।<sup>३</sup> उनके हाव भाव भृकुटि भग से निसृत माधुरी तरंगों में कोटि कामदेवों के मन को मगित कर रखा है ।<sup>४</sup> उनकी सरस गति और आवेश-मुक्त हास-परिहास में जो लावण्य उभ्रता है वह श्याम सुन्दर के रोम र म में बिध गया है ।<sup>५</sup> वे प्र म सर से अजरित श्याम की संजीवन सूटी है ।<sup>६</sup>

प्रेमपात्र का सपूर्ण मौरव उनमें विद्यमान है । वे यद्यपि प्र म रसासव के पाम से विवश हैं किन्तु अपनी 'गति कभी नहीं भूलती'—उनका प्र म कभी श्यामसुन्दर के प्रेम की भाँति घातुर नहीं बनता । उनकी प्र मपात्रोचित 'उसके सर्ववर्षों की त्यो बनी रहती है । श्रीमद्भागवत के रास-बर्णन में श्री श्याम

१ हि जी ७

२ तास बंधान भास में नायकि देलत श्याम कहत हो-होरी ।

हि० जी० ७५

३ हि० जी० २३

४ धुरत रम घंघ-भंग हाव भाव भृकुटि भग

माधुरी तरंग श्रुत कोटि मार री । हि० जी० ७६

५ हि जी ४६

६ हि जी ७७

७ यद्यपि अणि धमुरास रणामक पालविबल नाहिन पति भूमी ।

हि० जी ७७

सुन्दर बणु-नाद करते हैं और गोपियों को जिनमें श्रीराधा भी है, घनने देह-नेह भूस जाते हैं और व 'मनोहर मदन गोपाल' से मिलने के लिये चल पड़ती हैं । 'हित श्रीराधो' के पदों में श्रीराधा पर वंशी का कोई इस प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता । इसके विपरीत सखियों का वणु-ध्वनि को और उनका ध्यान भावपित करने के लिए वंशी के गुणों का वणु म उनके प्राग करना पड़ता है और फिर श्री के उठने में प्रसन्न होती हैं ।<sup>१</sup>

श्रीहिताशाय ने श्रीराधा का चित्रण उपकारक व रूप में किया है, उपरुत श्रीध्यामसुन्दर है । उनके अनुसार 'मनाहर ग्वास घनय दासों व भजन रस के लिये प्रगट हुए हैं और 'मानन्द निधि' श्रीराधा 'माहन' के हित प्रकट हुई हैं ।<sup>२</sup>

श्रीराधा हिताशाय की 'प्रागुनाय' हैं सवम्ब हैं, किन्तु प्रकेशो श्रीराधा की उपासना उनको प्रभीष्ट नहीं है । उनके उपास्य मुमन ही हैं । वास्तव में व प्रेमापासक हैं रसोपासक हैं, रसिक हैं और धृगम क बिना प्रेम की प्रयत्न गृमार रस को स्थिति संभव नहीं है यह हम ऊपर दस चुके हैं । अतः 'मान-सतना' मिलकर ही उनके हृदय को प्राप्त करत हैं ।<sup>३</sup>

१- वेणुनि शीरमान शीरी मुनिष वषों घरमान । हि० श्री० २८

२ राम घनय भजन रस वाग्य प्रगटे मान मनोहर ग्वा ।

शु० वा० ११

जनम निरी माह्न हित ध्यामा घान दनिधि मुनुमार ।

शु० वा० १५

३ ( उप श्री ) हितहृत्विश मान मपना मिलि हितो सिपवन श्री ।

और हंस-हंसिनी समाज ही उनके नेत्रों में शयार रस के सार का सिचन करता है ।<sup>१</sup>

नित्य बिहार का भीरुभा दयाम सुन्दर नित्य सीसा परायण है  
 रूप सीसा से बिरहित इनकी कोई स्थिति नहीं  
 है । इन दानों को नित्य एकरस प्रमावेदा बना  
 रहता है और उसका आस्वाद यह प्रतिक्षण करते रहते हैं ।  
 परस्पर प्रेम के आस्वाद में जिन क्रियाओं का प्रकाशन होता है  
 वे सब भिन्नकर प्रमासीसा कहलाती है । युगल का प्रेमास्वा  
 नित्य है अतः उनकी सीसा नित्य है । नित्य वही है जो नित्य  
 वर्तमान है । भीरुतावाय ने अपन धन क पवों को वतमानकास  
 वाचो 'आज' सङ्ग से आरम्भ किया है । जैसे 'आज मोपास  
 रास रस खेलत' 'आज मोकी बनी राछिका नागरी 'आज ससी  
 वन में जु धने प्रमु इत्यादि । नित्य में म गत है म अनामत  
 उसमें केबल वर्तमान है और यह नित्य रूप स अविस्थिति है ।

नित्य बिहारी राधा दयामसुन्दर की सीसाधा में पुराण  
 वर्णित सीसाधा की भाँति 'प्रगट' (अवतार काल की सीसा)  
 और 'अप्रगट' (नित्य मोसोकषाम की सीसा) का विभाजन नहीं  
 है । इनमें उक्त दाना प्रकार की सीसाधा का समन्वय बिलसाई  
 बता है एक ओर तो यह सीसाए अप्रगट सीसाधा की भाँति  
 नित्य अविच्छिन्न रूप से बसने वाली है और दूसरी ओर प्रगट  
 मोसाधों की भाँति भूतस पर आधरित होती है । भेद दाना हो

१ साहिबी डिगोर राज हन-नमिनी गमाज

सीवत इरिबंग नयन मुरम मार सी । डि. पी० ३६

है कि प्रगट सोलाएँ केवल द्वापरान्त में पृथ्वी पर आचरित हुई थीं और इन सोलाओं को, श्रीहित हरिवंश ने नित्य भूतल-स्थित माना है । उन्होंने युगल को यह कहकर प्रतीति दी है कि 'यह जोरी विपिन भूतल पर सतत अधिचल घनी रहे ।' विपिन भूतल से उनका तात्पर्य भूतल स्थिति वृन्दावन से है । उनकी दृष्टि में भूतल स्थित वृन्दावन ही नित्य वृन्दावन है—मायिक दृष्टि से वह मायिक दिक्षलार्ध नेता है और प्रमपूण दृष्टि से नित्य प्रेम स्वरूप । श्री हितवाचय ने भूतल स्थित वृन्दावन में बसने वाले क्रूर और पापियो को भी वस्तु रूप में देखकर अपना धाराध्य बताया है ।<sup>१</sup>

इस शृङ्गार रसमयो सोला की सुलियाँ एक धावपयक सभी प्रग हैं । वे श्रीराधा क्रिकरी हैं और उनका सम्पूर्ण सोभाग्य श्रीराधा के धरणा के साथ बधा हुआ है । इनके धगाध राधा प्रम और श्रीराधा की धगाध वासी वसन्तता ने विनकर इन दासिया को सखी पद पर प्रतिष्ठित किया है । वे श्रीराधा के साथ समानता का व्यवहार करती हैं और घनेक बार उनसे दूँ कहकर मानती हैं ।<sup>२</sup> श्रीहिताचय ने ससिय

१ हित हरिवंश विपिन भूतल पर सतत अधिचल जोरी ।

(हि० बी० ७०)

२ वे क्रूर घनि पापिना न च मनी मभाप्य हृष्याचये  
मर्षांगस्त्रुतया निरीश्य परम स्वाराध्य बुद्धिमत् ।

(रा० गु० २१४)

३ दूँ तीन मानी मयानी तै मरी एकी न मानी

हो तो भी बरत हारी बुद्धि बुद्धि ही ।

(हि० बी० २१)



को 'हित चितक मित्र चेरी' कहा है। उनके जीवन का एकमात्र प्रयोजन श्रीराधा का हित चितन है। श्रीराधा का सबसे बड़ा हित, स्वभावतः, उनके सुहाग की वृद्धि में है। श्याम सुन्दर का श्रीराधा के प्रति नित्य वर्धमान प्रेम और श्रीराधा का परम उदार प्रेम प्रतिदान ही श्रीराधा का सुहाय है। सखियाँ इस सुहाग की वृद्धि के लिये नई-नई प्रेम सोसायों का आयोजन करती हैं और उनमें श्रीराधा को मुक्ती देकर उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता।<sup>१</sup> सखियाँ मृत्यु, संकीर्ण, अभिनय, प्रसाधन फसा आदि में अत्यन्त कुशल हैं। श्रीराधा का मान-मोषन सखियों की सेवा का प्रधान अंग है और इस काय को वे बड़ी विनम्रता से करते हैं।<sup>२</sup>

श्रीहिताशाय ने अपने पदों की रचना सतीभाव से भाविन होकर की है। सती भाव गोपीभाव से भिन्न बस्तु है। गोपियाँ अपनेको श्रीकृष्णकान्ता मानती हैं, सखियाँ श्रीराधाकिकरती हैं और उन्हींके नेह नाते से श्रीश्यामसुन्दर उनको प्रिय हैं—श्यामसुन्दर के साथ उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। राधा कृष्ण की शृंगार लीला का वर्णन करने वाले पुराणों और सम्प्रदायों में इन गोपियों में से अनेक श्रीराधा को सती मानो जाती हैं और उनके रूप में सम्मिलित हैं। वे श्रीराधा कृष्ण की प्रणय लीला में सहायक बनती हैं और उन दोनों का मुक्तो देकर मुक्ति होती है। श्रीकृष्ण पूर्णतया श्री राधा की ओर आश्रय हाते हुए

१ हित चितक निजु चरितु उर आन द न समात ।

निरति निपट गीतनि मुय कृष्ण तोरति बनि जा ॥ (हि० श्री० २३)

२ हि० श्री० २३

भी अपने प्रति इन गोपियों का प्रेम का सिध्द करत रहते हैं।  
 पृथ्वाय के महात्माओं ने श्रीराधा कृष्ण की शृंगार सीमा में  
 इसी प्रकार की सखियों का वरण न किया है। ये सब श्रीकृष्ण  
 काता हैं और श्रीराधा का प्रति सौहाव हाने के कारण सब  
 उनका सखा हैं। श्रीरूपगोस्वामी म उज्ज्वल नीलमणि में कुछ  
 ऐसी सखियों का वरण न किया है जो श्रीराधा की दासी हैं और  
 मञ्जरी कहलाती है। श्री राधा जिस प्रकार श्री कृष्ण के  
 प्रति आसक्त है उसी प्रकार उनकी ये दासियाँ-मञ्जरियाँ भी  
 हैं। श्रीराधा और मञ्जरियों के आराध्य 'भगवान् प्रवेश' तनय'  
 हो हैं। मञ्जरियाँ श्रीराधा दास्य का द्वारा श्रीकृष्ण की प्राप्ति के  
 लिए प्रयत्नशील है। उनकी भी प्रधान रति श्रीकृष्ण में ही है।  
 नित्य विहार में सखियों की प्रधान रति श्री राधा के चरणों में  
 है। वे श्रीकृष्ण से श्रीराधा के चरणों में 'न्यति' प्रदान करन  
 की प्रार्थना करती है। १) अतः ये सखियाँ मञ्जरियों से भिन्न हैं।

नित्य विहार में सखियाँ ही जीव के प्रवेश का एक माध्यम  
 द्वार है। सखियों के भाव के मायम ही उपासक इस घनाद्य-  
 घनत प्रेम सीमा में प्रवेश करता है। उन ही की भाँति वह भी  
 राधा-कृष्ण को ग्रहण करता है और उन ही से राधा ध्याय  
 मुन्दर का अङ्ग प्रेम का समरूप कर उसकी धार आकर्षित होता  
 है। सखियाँ श्री कृष्ण के वन में ही वह प्रेम माग में अग्रसर  
 होता है और अन्त में सखी स्वरूप को प्राप्त हाकर इस सीमा  
 का एक भग बन जाता है। यह स्मरण रहे कि सप्रदाय में सखी

१ निरु निरुत्तमा पदे रसमय इदानी न्यतिम् ।

(श्यामरस गुणानिधि स्तोत्र १११)

भाव केवल मानसिक भाव माना जाता है और इसके प्रत्यक्ष भावकरण को गर्हित समझा जाता है।

बृन्दावन नित्य विहार का दूसरा भावप्रयुक्त अंग बृन्दावन है। यहाँ की सभन श्रुतियों में ही प्रेम की वह परमाहुत क्रीड़ा होती रहती है जिसका देखकर अंग, मृग, शशि तारा गए चर्चित रह जाते हैं और यहीं के सुभग यमुना तट पर रस के वा प्रमाण सागर तरंगान्वित होते रहते हैं। बृन्दावन में शरद और बसंत नित्य वर्तमान रहते हैं और अनेक भाँति के पुष्पों के सौरभ से अलिकुल मल बना रहता है। यहाँ त्रिकुल आमन्द संधीर बनकर मृत्यु करता रहता है और रुचि दायक शीतल मंद सुगंध पवन सबब महता रहता है। यहाँ एक अत्यन्त कमनीय और नवम निष्कृज मन्दिर सुशोभित है जिसका शृंगार-प्रसाधन नित्य कोटि कामदेवों का समूह करता रहता है।<sup>१</sup> यहाँ धीराभा श्याम सुन्दर के हृदयों में भरा हुआ महा शृंगार रस ही बाहर उद्घुल कर यमुना के रूप में तीव्रवेग से प्रवाहित हो रहा है।<sup>२</sup> और इसी 'वर यमुना बल' से बृन्दावन का सिधन होता है।

बृन्दावन की अभिजाती वृन्दा सखी है और बृन्दावन सखी सत्व की ही एक परिणति है। सखियों की भाँति बृन्दावन भी प्रधानतः धीराभा से सम्बन्धित है। इसकी प्रत्येक क्रिया धीराभा के मुक्त के सिधे होती है। बृन्दावन भी उपा माधव की प्रीति के महीन बिसासों का प्रयोजक बनता रहता है।

१ हि० बी० २७

२ धी हित हरिवंश गोस्वामी रचित धी यमुनाटनम् पृष्ठीक ३

उसके द्वारा रचित सीमा का एक उदाहरण श्रीहिताशाय न दिया है। बृन्दावन की कुओं की रचना विविध प्रकार से हुई है और जिस प्रकार की कुओं में राधा मोहन प्रवेश करते हैं वही उनकी सीमा का रूप वही बन जाता है। बृन्दावन के सत्ता कुओं के पत्र और पुष्प इतने निमग्न हैं कि श्याम श्यामा उनमें नक्षत्रप्रतिबिम्बित होते रहते हैं। किन्तु एक कुओं ऐसी है जहाँ सखियों और श्यामसुन्दर के प्रतिबिम्बों में भी धीराधा ही दिखलाई देती हैं। सबत्र धीराधा के प्रतिबिम्ब देखकर श्याम सुन्दर भ्रम में पड़ जाते हैं और बिम्ब से—स्वयं धीराधा से—न मिल सकने के कारण व्याकुल बन जाते हैं और एक सुन्दर सीमा की सृष्टि हो जाती है।<sup>१</sup>

धीराधा के साथ जितना सुदृढ़ संबंध बृन्दावन का है उतना ही धीराधा का बृन्दावन के साथ है। श्रीहिताशाय ने धीराधा को एकमात्र बृन्दावन में गोधर बताया है।<sup>२</sup> और उनकी प्राप्ति के लिए कोटि जमान्तों में भी एकमात्र बृन्दावन भूमि पर आशा सगाई है।<sup>३</sup>

एक स्थान में तो उन्होंने यहाँ तक कहा है कि बृन्दावन की सृष्टि के बिना धीराधा नाम का स्फुरण भी सम्भव नहीं है।<sup>४</sup> धीराधा और बृन्दावन का ऐसा सुदृढ़ संबंध देख बटु धीहिता

१ हि० बी० ४७

२ राधा-रस गुणानिधि स्लोक ७६

३ राधा रस गुणानिधि स्लोक २१६

४ पदप्राम स्फुरति बहिमा एव बृन्दावतस्य । (रा. र. गु. स्लोक २६ )

धर्म द्वारा स्थापित श्री राधा की प्रधानता वाली रस रीति को 'वृन्दावन रस' कहा जाता है ।<sup>१</sup>

वृन्दावन-रस पद्धति भरत की रस-पद्धति की भाँति रस निष्पत्ति का विवेचन करने वाली कोई परिपाटी नहीं है । यह प्रेम-परिपाटी है और इसमें प्रेम के स्वल्प उसकी विभिन्न दशाओं और कोटियों का विवेचन हुआ है । राधाकृत्य के द्वारा निरत्य आस्वादित होने के कारण यह प्रेम ही रस रूप है और इसी आधार पर इस प्रेम परिपाटी को रस-पद्धति कहा जाता है । गौड़ीय भक्ति-रस सिद्धान्त भी प्रधानतः प्रेम-सिद्धान्त ही है । प्राचीन परम्परा का अनुसरण करके इस संप्रदाय में रस निष्पत्ति का निष्पत्ति भी किया गया है किन्तु महारथ इसके प्रेम-सिद्धान्त को ही दिया जाता है और वही संसार को इसकी सबसे बड़ी देन माना जाती है ।

श्री हित्वाचार्य ने अपनी रचनाओं में और विरापत अपने राजभाषा पदों में वृन्दावन रस पद्धति का 'आचरण' दिखलाया है— इस किण्वित प्रेम परिपाटी को विशेष प्रकार की सीतामो में आधारित होता दिखलाया है । राधा यथाम सुन्दर जिस प्रकार मनुष्याकार होते हुये भी मनुष्य से अनेक बातों में भिन्न हैं वही प्रकार उनकी यह शृङ्गार केलि भी लौकिक काम केलि जैसी होते हुये भी उससे भिन्न है । श्री हित् हरिबन्ध गोस्वामी को इस

<sup>१</sup> वृन्दावन रस मोहि भाव हो ।

ताकी ही बलि जात सरौ री जो मोहि धानि मुनाव हो ॥

(ध्यात वा. पृष्ठ ७३)

पुन रीति आचरत प्रपट तब जय दिवे । ऐ वा. प्र १२

प्रेम-केसि को धनुपूति जितनी तीव्र और प्रत्यक्ष है उतनी ही ममय वाली उनको इसका वर्णन करने की मिली है। उम्होंने बड़ी सरस और समृद्ध ब्रज भाषा में इस शृङ्गार केसि के अनेक कमत्कार पूरा चित्र हित चौरासीमें उपस्थित किये हैं। श्रीराधा मौन्य के तो वे धनुपम सिलपी हैं। उनके श्री राधा मय के वर्णनों के द्वारा वज्र-वाली का धभूत पूव शृङ्गार हुआ है और उसकी म्यजना शक्ति में वृद्धि हुई है।

हित चौरासी के पदों में कही भी आपास किवा पम दिससार्ई नहीं देता। इस प्रकार के काव्य का जन्म हृदय की भाव विवशता में से होता है। संवेदन शील मन जब किसी मरस और मुन्दर भाव के द्वारा अभिभूत हो जाता है तो उसमें व काव्य बैस ही फूट निकलता है जैसे बसठागम में कोकिल के फूट स गान। परमुराम अनुबेदी ने श्री हित हरिवंश योस्वामी के काव्य की आलोचना करते हुये कहा है, 'हित हरिवंश 'रंग विभास' की विविध चोष्टियों का ऐसा चित्रण करते हैं जैसे वे उन्हें प्रत्यक्ष देख रहे हैं और उनमें स किसी एक का भी वर्णन न करना उनके लिये असह्य हो सकता है।'

इस निबन्ध में हित चौरासी की भाव-दृष्टि को समझने की चेष्टा की गई है उसकी अभिम्यजना शैली का विवेचन माहिरियक विद्वान हो कर सकते हैं। इस दिशा में मेरे द्वारा की गई चेष्टा आपन्य मात्र होगी।

—समिताचरण योस्वामी









## \* श्रीहित क्लृपण \* —

॥ राग बिमास ॥

जोई-जोई प्यारी कर सोई मोहि भावै,  
 भाव मोहि जोई सोई-सोई करे प्यारे ॥  
 मोकों तो भावती ठौर प्यारे के मननि में,  
 प्यारी भयो चाहै मेरे नैननि के तारे ॥  
 मेरे तम-मन-प्राण हूँ तैं प्रीतम प्रिय,  
 अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे ॥  
 मैं श्रीहित हरिवंश हंस-हंसनी साँवल-गौर,  
 कही कौन करे जल-तरङ्गनि<sup>१</sup> न्यारे<sup>२</sup> ॥१॥

प्यारे घोली कामिनी<sup>३</sup> आजु भीकी जामिनी<sup>४</sup>,  
 भटि मधीन मेघ सों कामिनी<sup>५</sup> ॥  
 मोहन रसिक-राइरी<sup>६</sup> भाई, तासों जु-  
 मान कर ऐसी फौन कामिनी ॥  
 ज श्रीहित हरियश भवण सुनत प्यारी,  
 राधिकारमण सों मिसी गज-गामिनी<sup>७</sup> ॥२॥

१-धरदा जगता है २-ब्रह्म और तरंग को ३-धरदा ४ जामिनी  
 ५-रसिक ६-विजय, ७-रसिक शिरोमणि, ८-दासी जैसी बाह्य बाधी ।

प्रातः समय बोक रस-सपट<sup>१</sup>,  
 सुरत-मुद जय-जुत अति फूस<sup>२</sup> ॥  
 धम-वारिज घनविन्दु<sup>३</sup> बदन पर,  
 मूषण अगहि अग विकूल<sup>४</sup> ॥  
 कष्ट रह्यो तिलक शिथिल<sup>५</sup> अलकाधलि<sup>६</sup>,  
 वदन<sup>७</sup> कमल मानो अलि<sup>८</sup> मूस ॥  
 जे धीहित हरिवश मदन रग रंगि रह,  
 नन-बैन कटि शिथिल दुकूल<sup>९</sup> ॥३॥  
 आजु तो जुवति तेरो बदन मानन्द भरयो,  
 पिय के संगम<sup>१०</sup> के सूचत सुख-घन ॥  
 आलस-वसित-धोल<sup>११</sup> सुरग<sup>१२</sup> रंगे कपोल,  
 विथकित<sup>१३</sup> अरुण<sup>१४</sup> उनीदे<sup>१५</sup> बोक नैन ॥  
 रुधिर<sup>१६</sup> तिलक-श्लेश<sup>१७</sup> किरत<sup>१८</sup> कुसुम-केश<sup>१९</sup>,  
 शिर सोमंत<sup>२०</sup> भूपित मानो त<sup>२१</sup> न ॥  
 करुणाकर<sup>२२</sup> उवार रावत पछु न सार<sup>२३</sup>,  
 वसम-वसम<sup>२४</sup> सागत मद दैम ॥

१-रमबोमी २-प्रेम-जीवामे समाप्त रूप से विग्रही होने के कारण अर्थात् प्रसन्न, ३-गमोके की घनी सूई, ४-घातम्पन ५-हीनो, ६-क्यापाठ ७-मुग, ८-भौता ९-वृष्ट १०-मिस्रन, ११-आलसमुक्त बचन १२-बाध, १३-पकेहुए १४-बाध १५-नीए से घरे हुए, १६-मुग्दर, १७-तिष्ठक का धोड़ा सा रंग १८-गिरते हैं १९-केशों में गुप्ते हुए केश, २०-भौग २१-गुन, २२-करवा मागर २३-दोष, बाकी, २४-घर ।

काहे फों दुरस<sup>१</sup> भीर पलटे प्रीतम घोर,  
 बस किये श्याम सिखै सत-मैन<sup>२</sup> ।  
 गसित<sup>३</sup> उरसि-माल<sup>४</sup>, शिपिस किंकिनी-जाल<sup>५</sup>,  
 जँ श्रीहित हरियश सता-गृह<sup>६</sup> शैन ॥४॥

आम् प्रभात सता-मन्दिर में,  
 सुख बरसत अति हरधि<sup>७</sup> युगल धर ।  
 गौर श्याम अभिराम<sup>८</sup>, रङ्गभरे,  
 सटक-लटक पग धरत अबनि<sup>९</sup> पर ।  
 कुच-कुमकुम<sup>१०</sup> रमित<sup>११</sup> मासाबसि,  
 सुरत नाथ<sup>१२</sup> श्रीश्याम घाम<sup>१३</sup> धर ।  
 प्रिया प्रेम के अक<sup>१४</sup> असकृत<sup>१५</sup>,  
 छिप्रिस चतुर-शिरोमणि मिजकर<sup>१६</sup> ॥  
 बम्पति<sup>१७</sup> अति अनुराग मुवित<sup>१८</sup>,  
 कस<sup>१९</sup> गान करत भन हरत परस्पर<sup>२०</sup> ।  
 ज श्रीहित हरियश प्रसस-परायन<sup>२१</sup>,  
 गायन असि सुर वेत मधुर तर ॥५॥

१-दिगामी है २-मैकदों प्रेम श्रीबाघें ३-दूर गई ४-हरप वा घाल  
 दुई माया, ५-पुँसुक बुद्ध करबनी, ६-सता-मन्दिर ७-प्रमन्न होकर, ८-मुग्ध  
 ९-भूमि, १०-रोली ११-रंगी हुई, १२-रमित-शिवाभयि, १३-हा  
 १४-विग्द, १५-सुरोमित, १६-घबरे हाथ स १७-सुगह १८-प्रक  
 १९-मुग्ध, २०-बुद्ध सुमेरे वा, २१-प्रथमा म पुर्य हरप बाघी ।

कौन खतुर सुवती प्रिया,  
 जाहि मिलत सास चोर छुँ रन ।  
 दुरधत बघोऽव दुरैः मुनि प्यारे,  
 रंग१ में गहिले२ खन में नन ॥  
 उर मख-घट्ट३ विराने४-  
 पट५ अटपटे से खन ।  
 ज थी हित हरिवश रसिक  
 राधापति प्रमथित मैन० ॥६॥

॥ राग निशाद ॥

भाजू निकुज मनु में खेतत,  
 मखन किशोर मखोन किशोरी ।  
 अति अनुपम अनुराग परस्पर,  
 मुनि अमृत६ भूतस७ पर जोरी ॥  
 विद्रुम८ फटिक९ विविध१० निमित्त११ घर१२,  
 मय कपूर पराग म घोरी ।  
 कोमल किसलय१३ शयन सुपेशल१४,  
 सापर श्याम निवेशित१५ गोरी ॥

१ द्विपत्ये से बघो द्विपै, २ अनुराग, ३ मीत्रे रूप, ४ इदम पर मर  
 के विन्ध, ५ दूधरे के, ६ बघ, ७ मम से स्वाकृष्ण बने रूप, ८ मवी  
 ९ भूमि, १० भूगा, ११ एकटिक मयि (मकर रंग की), १२ बहुव प्रकार के  
 १३ बगो दूरै, १४ भूमि, १५ कीरक १६ कल्पल, १७ विराजमान की।

मियुन<sup>१</sup> हास-परिहास परायन,  
 पीक कपोल कमल पर मोरी<sup>२</sup> ।  
 गौर-श्याम भुज कलह ममोहर  
 नीवी-वधन<sup>३</sup> मोघत<sup>४</sup> डोरी ॥  
 हरि उर मुकुर<sup>५</sup> विलोकि अपनपौ<sup>६</sup>  
 विघ्नम<sup>७</sup> विकल मान जुत मोरी<sup>८</sup> ।  
 चिबुक<sup>९</sup> सुचार प्रलोद्<sup>१०</sup> प्रवोधत<sup>११</sup>,  
 पिय प्रतिबिम्ब जनाय निहोरी<sup>१२</sup> ।  
 नेति-नेति वचनामृत सुमि सुमि,  
 ललिताविक देखत कुरि घोरी ।  
 न श्रीहित हरिबश करत कर-धूनम<sup>१३</sup>,  
 प्रणयकोप<sup>१४</sup> मालावलि तोरी ॥७॥

अति ही अरुण तेरे नैन मलिन<sup>१५</sup> री ।

आलस जुत इतरात रग-मगे,  
 भये निशि सागर<sup>१६</sup> मखिन<sup>१७</sup> मलिन री ।

१ पुगघ, रयामा रयाम २ पीक कपोल कपोल जमे मानुम हो  
 है जैसे कमल पर माध, मुकुरमा कदा दिवा हो । ३ कटिपवन, ४ लोका  
 ५, ६ रूपय, ७ अपना प्रतिबिम्ब (परदाई), ८ भ्रम म. श्री राय  
 ९ अयो, १० महलाकर ११ ममभाते है १२ नद्य यावना क  
 १३ हाथ कपडाना, १४ प्रेम का भाव, १५ कमलानी, १६ जागने  
 १७ काउच ठे ।

शिथिल पसक में उठति गोलक<sup>१</sup> गति  
 बिघयो<sup>२</sup> मोहन मृग सकत घलिन रो ।  
 जे श्रीहित हरिवंश हसकलगामिनि,  
 संभ्रम<sup>३</sup> येत छमरनि अलिन<sup>४</sup> रो ॥८॥

बनी श्रीराधा मोहन की भोरी ।  
 इंद्रनीलमणि<sup>५</sup> श्याम मनोहर, सात कुम्भ<sup>६</sup> सतु गोरी ॥  
 भाल विशाल तिलक हरि, कामिनि चिकुर<sup>७</sup> चंद्र<sup>८</sup> बिष रोरी ।  
 गज-नायक प्रभु घास, गयबनि-गति<sup>९</sup> वृषभानु विशोरी ॥  
 नील निचोस<sup>१०</sup> चुवति, मोहन पट पीत<sup>११</sup> अरुण शिर खोरी<sup>१२</sup> ।  
 जे श्रीहित हरिवंश रसिक राधापति सुरत रंग<sup>१३</sup> में खोरी<sup>१४</sup> ॥९॥

आजु मागरोकिशोर भावती<sup>१५</sup> विचित्र जोर<sup>१६</sup>,  
 कहा कहीं अंग-अंग परम माधुरी ।  
 करत केलि<sup>१७</sup> कंठ मेलि बाहुदह<sup>१८</sup>, गह-गंढ<sup>१९</sup> -  
 परस<sup>२०</sup>, सरस रास-सास<sup>२१</sup> मंडसी जुरी ॥  
 श्यामसुन्दरी विहार, बांसुरी मृदंग तार<sup>२२</sup>,  
 मधुर घोष<sup>२३</sup> नूपुरादि किफिनो घुरी<sup>२४</sup> ।

१-ठारा (घोंतों का) २-बैध दिना, ३-अम, ४-मतिरों को ।  
 ५-गहरी पीले रंग को मणि, ६-सोना ७-बाण, ८-चन्द्रिका, ९-द्विनो  
 जैसी बाण १०-बाण्यारुण वध ११-गोबध, १२-बाण १३-प्रम रंग  
 १४-रंगी दुर्ह, १५-मम को माने बाणो, १६-ओषी, १७-ओषी, १८-एक  
 घुरे के शठ में हाथ बाणकर, १९-एक घुरे के कपोल, २०-एक करके,  
 २१-नूप, २२-तार के बाजे मारंगी धादि । २३-संग २४-घुरी, ।

जै श्री देवत हरिवंश आसि, नितनी सुयंग<sup>१</sup> घाल,  
 वारि केर देत<sup>२</sup> प्राण देहसौं बुरी<sup>३</sup> ॥१॥

मजुस कस फु ज वेश, राधा हरि विशव<sup>४</sup> वेश,  
 राकार मम<sup>५</sup> फुबुद-बघु<sup>६</sup> शरव जापिनो  
 सावस बुति<sup>७</sup> बनक अंग<sup>८</sup>, विहरत मिसि एक मग,  
 नीरव<sup>९</sup> मणि नील मध्य लसत दामिनी  
 अदण पीत नखबुकूल, अनुपम अनुराग मूल,  
 मोरमपुत<sup>१०</sup> शीत अनिल<sup>११</sup> मव गामिनी<sup>१२</sup>  
 किसलय बस रचित शम, घोसत पिय घाटु बन<sup>१३</sup>,  
 मान सहित प्रतिपद<sup>१४</sup> प्रतिकूल कामिनी  
 मोहन मन वधत मार<sup>१५</sup>, परसत कुच नीखि-हार,  
 वेपयमुत<sup>१६</sup> नेति-नेति बदति<sup>१७</sup> भामिनी  
 नर वाहन प्रभु सुकेलि, बहुविधि भर<sup>१८</sup> भरत शैलि<sup>१९</sup>,  
 सौरत रस<sup>२०</sup> रूप नबी जगत-पावनो<sup>२१</sup> ॥१॥

१-सुयंग गुण की २-स्वीकार कर देती है ३-जगोर से दिगा  
 ( छता मरव को घोट में ) ४-मुग्ध, ५-बुद्धिमा, ६-घाकाठ ७-बम्ब  
 ८-कीरनामगुग्धर, ९-गारे घ ग बाकी घी राधा, १०-मेघ, बादल, ११-  
 बुल, १२-वपन, १३-मद गति से बचने बाकी, १४-मुराम्मद काने के क  
 १५-हरद्विजा में, १६-प्रेम मय काम १७-दण्डपुत्र १८-बोझनी  
 १९-म म का मार, २०-श्रेष्ठ है, २१-म गार रस, २२-वदित करने का  
 स नोस्वामी रतिवधाधरो की टोका ( म० १७३० ) में 'मनु बाक है ।



चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख मिधान,  
 रास रघ्यौ श्याम तट कलिद-नदिनी<sup>१</sup> ।  
 नितत युषती समूह, राग रंग अति कुसूह<sup>२</sup>,  
 बाजत रसमूस सुरलिका अनदिनी ॥  
 वशीषट निकट जहां, परम रमनि<sup>३</sup> भूमि तहां,  
 सफल सुखद मलय<sup>४</sup> बहै धायु मन्दिनी ।  
 जासी<sup>५</sup> हृषिक<sup>६</sup> विकास कानन<sup>७</sup> अतिशय सुवास,  
 राका मिशि<sup>८</sup> शरष मास विमल चदिनी ॥  
 नरखाहन प्रभु<sup>९</sup> निहार, लोचन भरि घोष-नारि<sup>१०</sup>  
 नथ शिख सौंदर्यं काम दुख-निकन्दिनी<sup>११</sup> ।  
 विससह भुज प्रीत मेलि, मामिनि सुख सिधु क्षति,  
 मय निपु ज श्याम केसि<sup>१२</sup> जगत घन्दिनी<sup>१३</sup> ॥१२

नन्द के साल हरयो मन मोर ।

हौं अपने मोतिन तर पोवति,

कांकर डारि गयो सखि मोर ॥१॥

धंरु बिलोकमि घाल छपीसी,

रसिक शिरोमणि मय विशोर ।

१ वसुधात्री, २ कौतूहल, ३ रमणीय सुन्दर, ४ चन्द्रमयी  
 गण कुल, ५ लपेछो, ६ धाका-मा ७ श्री वृन्दावन ८ पूर्विका की रात्रि,  
 ९ श्री श्यामसुन्दर, १० श्री वृषभाज मन्दिनी, ११ पाट वरने बाबी,  
 १२ श्री गार कोटा, १३ नमस्कार करने वाला ।

प्राण रवन सौं क्यों करत,  
 आगसँ बिनु आरत<sup>१</sup> ॥  
 पिय चितवत तब चन्द्रवदन तन,  
 तू अघ मुख<sup>२</sup> निज धरण निहारत<sup>३</sup> ।  
 ये मृदु चिबुक प्रसोय<sup>४</sup> प्रबोधत<sup>५</sup> ,  
 तू भामिनि कर सौं कर टारत<sup>६</sup> ॥  
 विधस अघोर विरह अति कातर,  
 सर-औसर<sup>७</sup> कछुव<sup>८</sup> न विचारत ।  
 ज श्रोहितहरिवंश रहसि प्रीतम मिसि,  
 तृपित नन काहे न प्रतिपारत<sup>९</sup> ॥७५॥

नागरो निकु ज ऐन<sup>११</sup> कितलय बल रचित शन  
 कोक-कला-कुसल कुँवरि अति उवार री ।  
 सुरत रग अग-अग हाव भाव भूकुटि भग,  
 माघुरी तरंग मयत कोटि मार री ॥  
 मुखर<sup>१२</sup> नूपुरनि सुमाव किकिनी विचित्र राव,  
 'विरमि विरमि'<sup>१३</sup> नाय यदत सर विहार री ।

१-अपराध के बिना, २-सं० आशा नारी (मान), ३-भीषे को मुख  
 काके, ४-रग दही हो, ५-मदमा कर ६-ममभावे है, ७-इटाती है,  
 ८-मदम चममव, ९-बुध भो १०-वाक्यन बरती, ११-गूढ १२-शब्दाव  
 माव, १३-विराम करे ।

सादिलो किसोर राज हस-हसिनो समाज,  
सौघत हरिवश नयन सुरम-सार१ रो ॥७६॥

मटकस फिरति बुबति रस फूना ।  
सतामवम में सरस सकल निशि,  
पिय सँग सुरत हिठोरे<sup>२</sup> झूली ॥  
जद्यपि अलि अनुराग रसासय<sup>३</sup> पान,  
घिबस<sup>४</sup> नाहिन गति भूली ।  
आलम-घसित<sup>५</sup> मेंन विगलित<sup>६</sup> सट  
उर पर कछुक कचुकी छूली<sup>७</sup> ॥  
मरगजि= मास सिधिन कटि बंधन  
घियित फणजस पीक दुकूसो<sup>८</sup> ।  
संधो हितहरिवश मदम-सर जर जर<sup>९</sup>  
विपकित श्याम सजीवन भूली<sup>११</sup> ॥

सुधंग माघत नयल किसोरी ।  
वेई-वेई कहत चहत प्रीतम बिसि,  
वदनचद्र मनो सुयित चकोरी ॥

१-उरपर रस का सात, २-मम द्विचोरी, ३-रसामृत, ४-झुकी  
५-आलम से किो हूत ६-दही हुई ७-झुकी हुई ८-सुगंधित का  
दही हुई ९-बरस, १०-शाम रोम मिला हुआ ११-उकी ।

तान् यंघान भान म नागरि।

वेखत श्याम कहत हो हो री ।

जथी हितहरियश माघुरी अंग-अंग,

बरदस<sup>१</sup> सियो मोह्ना चित्त चीरी ॥७८॥

रहसि रहसि<sup>२</sup> मोहन पिय के संग री,

लईसी अति रस लटकत ।

सरस सुघग अग में नागरि,

चेईं चेईं फहत अयनि पद पटकत ॥

कोक कसाकुल जानि-सिरोमनि,<sup>४</sup>

अभिनय कुटिल भूकुटियनि मटकति ।

बिषस भये प्रीतम अलि रुपट,

निरछि फरज नासापुट<sup>५</sup> चटकत ॥

गुन गन रसिक राइ घूडामणि,

रिसयत पविन<sup>६</sup> हारपट झटकत ।

जथी हितहरियश निकट दासो जन,

लोचन-घदक रसासय गटकत<sup>७</sup> ॥७९॥

१-बगुर, २-अवदानी, ३-एकान में, ४-जानाघो में अथ

५-कुटकी, ६-बहम्यन वर धारण दासै बाबा कामूषय, ७-बाम बरती है ।

घस्तवी<sup>१</sup> सु कनक-बलसरी<sup>२</sup> तनास श्याम संग,  
 सागि रही अंग-अग मनोभिरामिनी ।  
 बबन जोति मनो मयंक, अलक तिसक छबि कसक,<sup>३</sup>  
 छपति<sup>४</sup> श्याम अ क मामो जसद वामिनो ॥  
 विगत-वास<sup>५</sup> हेम छम्भ<sup>६</sup> मनो सुषग येनी बट,  
 पिय के कठ प्रम पुष कृज कामिनी ।  
 अंभो शोभित हरिवश नाथ साय सुरत आमसवत,  
 उरज कमक कसस राधिका तुनामिनी ॥८०॥

राग ज्यौरी ।

वृषमानुनविनो मधुर कस यावे ।  
 विकट औघर ताम खर्चरी ताल सी,  
 नम्बनम्बन मनसि मोव उपभाव ।  
 प्रथम मञ्जन धारु, धीर फञ्जल तिलक,  
 भवन कु डस, वदन खड्गि समागो ॥  
 सुमग नक बेसरी,<sup>७</sup> रतन हाटक खरी,  
 मधर बंधूक,<sup>८</sup> दसम कु ड खमकागो ॥

१-मालिनी २-रत्न-बता, ३-श्याम विष्ट ४-विपरी है  
 ५-बल रदिन, ६-रत्न-रतन के समान दम ७-नामिका का भूषण,  
 ८-दुबहरिका का कृम ।

घलय ककन घाह, उरसि राजत हार,  
 फटिव? किकिनि, चरन नूपुर बजाम ।  
 हंस कल गामिनी मधत मव कामिनी,  
 मखनि मवर्यतिकार रग रुचि छागै? ॥  
 नित सागर रभस, रहसि नागरि नयल  
 चन्द्र-चासो? विविध भेदनि जनायो ।  
 फोक बिद्या? विवित, भाइ अभिनय मिपुन,  
 भ्रूखिलासनि मकरकेतन? नघाटी ॥  
 निविड? कानन भवन, घाहु रजित रघन?,  
 सरस आसाप? सुख पु म घरसायो ।  
 उभय संगम तिथु सुरत पूयन वधु<sup>१०</sup>,  
 इवत<sup>११</sup> मकरव प्ररिवश अलि - पायो ॥८१  
 नागरता<sup>१३</sup> की रासि<sup>१४</sup> फिसोरी ।  
 नव नागरकृसमोसि<sup>१५</sup> सावरो,  
 वरवस<sup>१६</sup> बिघो घित मुख मोरी ७ ।

१-कमर में, २-मँहरी, ३-हेती है ४-नूपुर की एक विशेष जात,  
 ५-१८ गात्र बजा ६-कामदेव को, ७-मधत ८-भीरावा की मुजा के द्वारा  
 मुताबित विषयम ९-रमपूर्व वात चीठ, १०-कमल, ११-भरता है,  
 १२-भरत, १३-चतुरता १४-समूह, १५-मातक, छोट, १६-बिचर,  
 १७-मोदका, पुमाका ।

रूप रुचिर अंग-अंग माधुरी,  
 बिन्दु भूपन भूपित ब्रज गोरी ।  
 छिन छिन कुसल सुधग अंग में,  
 फोक रमस रससिधु कफोरी ॥  
 घंघल रसिक मधुप मोहन मन,  
 राख कनक कमल कुच कोरी ।  
 प्रीतम नैन जुगल खजन छग,  
 धाँधे विविध निघघन डोरी ॥  
 अयनी उदर माभि सरसोरे में,  
 मनो कछुक मादिय मधु घोरी ।  
 जथी हितहरिषश पिघत सुन्दर वर  
 सोय सुदृढ निगमनिरे की तोरी ॥८२॥  
 छाँड़िदैं मानिनी मान मन धरिबी ।  
 प्रणतः सुवर सुधर प्राणयत्सम नयल,  
 घघन भाथीन सौँ दृता कत करिबी ॥  
 अपत हरि विवस तव नाम प्रति पर यिमस  
 मनसि तव ध्यानत मिमिस नहि टरिबी ॥

१-मजोरी दुरें २-मजोवर, ३-बेरी ४-दोम ५-चम अर के बिन्दु  
 ६-दरवा ।

घटत पल-पल सुभग सरद की आमिनी,  
 मामिनी सरस प्रनुराग विसि हरिषी ॥  
 हौ जु फछु कहत निजु घात सुनि मान सधि,  
 सुमुखि विनु काम धन बिरह दु ए मरिषी २ ।  
 मिलत हरिवश हिस कु ज किसलय सयन,  
 करत बस केसि सुछसिधु में तरिषी ॥८३॥

आजु घ देखियत है हो प्यारी रग भरी ।  
 मोप न दुरत घोरी वृषमानु की किसोरी,  
 शिथिल बटि की डोरी नव के सासन सौ सुरत सरी ३ ॥  
 मुत्तियन सर दूटी चिफुर-चंद्रिका ४ छूटी,  
 रहसि रसिक सूटी गडनि ५ पीक परी ।  
 नननि आलस घस अघर विष निरस पुल्लख,  
 प्रेम परस ६ जथी हितहरिवश री राजत छरी ७ ॥८४॥

इति श्रीगोस्वामी श्रीद्विवहरिवश महाप्रभु विरचित  
 श्रीद्विव चतुरांगी ममता ।

१-दुरता आदिपे २-चनुभव वरना ३-प्रेम बुद्ध दिना, ४-हेश  
 की बनी चन्द्रिका, ५-कराछ, ६-प्रम क रपरा म, ७-सत्यम् ।



## ❀ अथ फल स्तुति ❀

( चप्पय )

मवजल निधि कों नाब काम पायब कों पानी । प्रेम  
भक्ति को मूल मोद मगल सुख धानी ॥ निगम सार सिद्धान्त  
सन्त विश्राम मधुर वर । रसिकन को रस सार सकल अक्षर  
रस को घर ॥ चौरासी श्रीहितहरिवश कृत पद सुनै निशि  
भोर । छुटि चौरासी भ्रमनि तें निरख जुगल किशोर ॥१॥  
निरखे जुगल किशोर भोर अरु रनि न जान । पिय रूप  
रस मत्त भयो कछु ममहि न जान ॥ प्रेम लखना भक्ति  
होय हिय आमख कारी । अरु वृन्दावम वास सखी सुख के  
अधिकारी ॥ कुज महल की दहस सुख बम्पति सम्पति  
पाइ है । अथी रूपसाभ हित प्रीति सों जो चौरासी गाई है ॥२

( कवित्त )

छ पद विभास भाँस सात हैं बिसासल में टोड़ी में चतुर  
आसावरी में द्रु बने । सप्त हैं धमाथी में जुगल बसंत केलि  
देवगधार पख होय रस सों सने ॥ सारंग में घोडश हैं  
घार ही मन्तार एक गौड़ में सुहायो मय गौरी रस में भने ॥  
पट कल्यान निधि काहरे केदारे येव धानी हितगु की  
सब धौबह राग में गने ॥१॥

॥ इति श्रीफलास्तुति समाप्ता ॥





## \* श्रीहित स्फुट वाणी \*

॥ सर्वथा ॥

दादश<sup>१</sup> चन्द्र, कृतस्थल<sup>२</sup> मंगल, बुद्ध विरुद्ध, मुर-गुरु<sup>३</sup> सक ।  
 यदि दशम्म-मवस<sup>४</sup> भृगु-सुत<sup>५</sup>, मद<sup>६</sup> मुक्तेसु जनम के अक<sup>७</sup> ॥  
 अष्टम राहु, चतुर्थ<sup>८</sup> त्रिधामणि<sup>९</sup>, ती हरिघंश काच न शक ।  
 वो पै कृष्ण-चरण मन अपित ती करिई कदा नवग्रह रक ॥१॥

॥ सर्वथा ॥

मानु<sup>१</sup> शम्भ, जनम्म<sup>२</sup> निशापति, मंगल-बुद्ध शिवस्थल लीके<sup>३</sup> ।  
 जो गुरु होय धरम्म-मवस के ती भृगु-नद सुमंद नषीके<sup>४</sup> ॥  
 तीमरी केतु समेत विषु प्रम<sup>५</sup> ती हरिवश मन-अम पीके<sup>६</sup> ।  
 गोविन्द छोई अमत दर्शो त्रिध ती करिईई कदा नवग्रह नीक<sup>७</sup> ॥२॥

॥ छव्य ॥

नाजानो दिन-अत फवन<sup>१</sup> बुधि<sup>२</sup> घटहि<sup>३</sup> प्रकाशित ।  
 छुटि जु अचेत नेउ सुा भये विम-वासित<sup>४</sup> ॥

१-वाग्देवी २-बोधे स्थान में ३-गुरुपति ४-दशाव स्थान में ५-गुरु,  
 ६-वदि ७-जन्म स्थान में ८-सूर्य ९-भूष १०-अम स्थान में ११-अष्ट  
 १२-वाछवी स्थान १३-नवम स्थान १४-राहु १५-साह हीन १६-अष्ट  
 १७-बीज १८-बुद्धि १९-अत में २०-घोट-वसित ।

पाराशर सुर इन्द्र कल्प<sup>१</sup> कामिनि मन फंघा<sup>२</sup> ।  
 परि ष देह दुख-इन्द्र कौन क्रम-फाल<sup>३</sup> निकटा<sup>४</sup> ॥  
 यहि हरि हरि हरि हरिवंश हित जिनव<sup>५</sup> अमहि गुण-सलिल<sup>६</sup> पर ।  
 जिहि नामनि मगल लोक विहुँ सु हरि-यद भनु न विलम्ब कर ॥३॥

॥ सर्वपा ॥

तू पालक नहिं, भरघौ सयानप<sup>७</sup> काहे कृष्ण मजत नहिं नीके ।  
 अखिव सुमिष्ट तखिव सुरमिन यय<sup>८</sup> मन भंघत तंदुल जल<sup>९</sup> फीके ॥  
 जयश्रीहितहरिवंश नरकगति दुरम<sup>१०</sup> यम द्वारे कटियत नकछीक<sup>११</sup> ।  
 मव-अध<sup>१२</sup> कठिन, मुनीजन दुर्लभ, पावत क्यो जु मनुज-सन मीके<sup>१३</sup> ॥

॥ कृष्णलिया ॥

धरई प्राण जु घट रहें पिय विछुरंत निकज्ज<sup>१४</sup> ।  
 सर-अतर<sup>१५</sup> अरु काल-निशि तरफ तेज<sup>१६</sup> धन गज्ज<sup>१७</sup> ॥  
 तरफ तेज धन गज्ज लज्ज तुहि वदन न आवै ।  
 जल-बिहन<sup>१८</sup> करि नैन मोर किहि माय<sup>१९</sup> बतायै ॥  
 जै भी हित हरिवंश विचारि बाद अस कौन जु पकई ।  
 मारस यह सदाइ प्राण घट रहें जु धरई ॥४॥

१-समान २-हंसा सिया ३-काल की पति ४-येन किया ५-नही  
 ६-विजुन क्यो, जल, ७-बनुछई, ८-नाय का रूप ९-बाँसा का पानी  
 १०-कठिन ११-नीन्दने पर माक बाटी जाती है १२-सिब घोर इष्ट  
 १३-वीर्य मोदने पर, १४-निरवक १५-उत्तरेर का संतर १६-विजुनी  
 १७-यजना १८-प्राण के बिना १९-भाव,

॥ कृष्णसिखा ॥

मारस सर-बिहुरंत फौं जो पल सहय शरीर ।  
अग्नि अन्नग<sup>१</sup> जु तिय<sup>२</sup> मखै<sup>३</sup> ती जानै पर-पीर ॥  
ती जानै पर-पीर घौर घरि सकहि पञ्च-तन<sup>४</sup> ।  
मरत सारसहि कृति<sup>५</sup> पुनि न परची<sup>६</sup> जु लहत मन ॥  
जै श्री हित हरियंश विचारि प्रेम पिग्हा विन वा रस<sup>७</sup> ।  
निकट कृत नित रहत मरम कह जानै मारस ॥६॥

॥ छप्प ॥

तैं भाजन<sup>८</sup> कृत जटित<sup>९</sup> विमल अन्दन कृत इन्धन<sup>१०</sup> ।  
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरपप-रुल<sup>११</sup> रिंधन<sup>१२</sup> ॥  
अमृत घर<sup>१३</sup> पर करत कष्ट अंधन-हल याइत<sup>१४</sup> ।  
भार<sup>१५</sup> करत पाँवार<sup>१६</sup> मन्द घोषन विष चाइत ॥  
जै श्री हित हरियंश विचारि कै मनुज-देह गुरु-धरण गहि ।  
मकरहि ती राय परपच तजि कृष्ण-कृष्ण-गोविन्द कहि ॥७॥

१-नाम की अग्नि २-सारस की पत्नी ३-साय, अमुमक करे, ४-अन्न  
रेंगा कटोर शरीर, ५-बिहुरना ६-अमुमक ७-बिहुर के बिना रस की रिपति  
८-नाय ९-अज्ञान, १०-ईपन ११-तरनों की राप्ती १२-रापना १३-गुणो  
१४-बगाना है १५-बाड़ १६-प्रधान भूषण ।

॥ सर्वदा ॥

तातैं भैया मेरी सौं कृष्ण-गुण संचु<sup>१</sup> ।  
 कुत्सित पाद<sup>२</sup> विकारहिं परधन मुनु सिल मन्द परतिय धनु<sup>३</sup> ।  
 मणिगण-मुञ्ज ब्रजपति छाँड़त हित हरिवश कर गहि कंचु<sup>४</sup> ॥  
 पाये जान बगत में सब जन कपटी कुटिल कलियुग-टंचु<sup>५</sup> ।  
 इहि-परशोक सकल सुख पावत मेरी सौं कृष्ण-गुण सचु ॥८॥

॥ परिष्क ॥

मानुष कौ तन पाय भजौ ब्रजनाथ कौ ।  
 दर्बी<sup>६</sup> लैकै मूढ<sup>७</sup> जरावत हाय कौ ॥  
 जय श्रीहित हरिवश प्रपच विषय-रस मोहके ।  
 हरि हौं, पिन कंचन क्यौं चलै पथीसा<sup>८</sup> सोह के ॥९॥

॥ उग बिभावत ॥

तूरति रंगमरी देखियत हँरी राघे, रहसि<sup>९</sup> रमी मोहन सौं धरैन ।  
 गति अति शिथिल, भ्रगट पलटे पट, गौर अंग पर रासत अँन<sup>१०</sup> ॥  
 जलज<sup>११</sup> रूपोल ललितलटकतिलट, मृकुटि कुटिलज्यौं धनुषहतमन<sup>१२</sup> ॥  
 सुन्दरिरहब<sup>१३</sup>, कँइय<sup>१४</sup> कषुफि, कत<sup>१५</sup> कनककलशकूच विषनसदन<sup>१६</sup> ॥

१-अंकुश कर। २-विवाद ३-छोड़ है ४-बाँध ५-प्रभावित ६-कमठी  
 ७-सिक्का ८-गवान्त में ९-अमी प्रकार, १०-कमल ११-नाम देव १२-दहरी  
 १३-बही है १४-बयो १५-जल बिगह।

अघर विंय दलमलित, आरमयुत<sup>१</sup> अरु आनद सुधत सखि नैन ।  
जैभीहितहरिवंश दुरत<sup>२</sup> नहिं नागरि, नागरमधुप मथित सुखसैन ॥१०॥

॥ राग बिभावम ॥

आनंद आजु नंद के द्वार ।

दास अनन्य<sup>३</sup> भजन-रस फारख प्रगटे लाल मनोहर ग्वार ॥

चदन सकल घेनु तन मंदिह कुसुम दाम<sup>४</sup> शोभित आगार<sup>५</sup> ।

पूरन कृम्म धने तोरन<sup>६</sup> पर धीच रुचिर पीपर की डार ॥

युवति युथ मिल गोप विराजत याजत पणध मृदग सुतार ।

जैभीहितहरिवंश अजिरवर<sup>७</sup> वीधिनु दधि-मधु-शृष-हरदकेमार<sup>८</sup> ॥११॥

॥ राग पतापी ॥

मोहन लाल के रग राँची<sup>९</sup> ।

भर म्याल परी जिन कोऊ बात दशों-दिश माँची<sup>१०</sup> ॥

कंत अनत फर्ग जो कोऊ बात कहों मुनि साँची ।

यह जिय जाहु मलै मिर ऊपर, हीं व प्रगट हौं नाँची ॥

जाग्रत-शयन रहत उर ऊपर मणि फचन ज्यों पाँची<sup>११</sup> ।

जय श्री हितहरिवंश डगों काके डर हीं नाहिन मति काँची ॥१२॥

१-आभास युक्त २-दिलना ३-अनन्य काम ४-पूरनों की सामा ५-घर,  
६-गार ७-घोषन ८-गहू ९-जैभी हई १०-दल पर ११-जड़ी हई ।



॥ १६ ॥

खसौ वृषमानु गोप के द्वार ।

सन्म सियो मोहन हित रुपामा,

आनंद - निधि सुहृमार ॥

गायत जुवति सुदित मिलि मंगल,

उच्च मधुर धुनि - धार ।

विबिध कुसुम किसलय फोमल दल,

शोभित बंदन धार ॥

विदित<sup>१</sup>वेद विधि<sup>२</sup> विद्वित<sup>३</sup> विप्रपर,

करि स्वस्तिनु<sup>४</sup> उच्चार ।

सुदुल मृडंग सुरज मेरी बफ,

दिवि<sup>५</sup> दु दुमि रबकार<sup>६</sup> ॥

मागव मृत बंदी धारण सम,

कइत पुकारि - पुकारि ।

हाटक<sup>७</sup> हीर चीर पाटम्बर,<sup>८</sup>

देत मम्हारि - सुम्हारि ॥

षदन मकल घेनु-तन मडित

चले जु ग्याल सिंगारि ।

अप धी हितहरिबंध दुग्ध-दधि खिरफत,

मध्य हरिद्रा गारि<sup>९</sup> ॥१६॥

१-प्रसिद्ध २-वैदिक क्रिया, ३-संपन्न की ४-मापीर्वादात्मक मन्त्र  
५-माकाम में ६-वाद्य ७-जुवण ८-रेयनी वस्त्र, ९-इसकी बातकर

राग गौरी

सेरीई ध्यान राधिका प्यारी गोवद्ध न घर सातहि ।  
 कमक सता सी क्यों न विराजत अरुमो श्याम तमालहि ॥  
 गौरी गाम सुतान ताल गहि रिमवस क्यों न गुपालहि ।  
 यह जीवन कधन तन ग्वाभिन सफस होत इह कालहि ॥  
 मेरे कर्हे बिलय न करि सखि, भूरि भाग भति भालहि ।  
 जयभीहितहरिवश उचितहो छाइत श्याम कंठकी मालहि

। १७।

पद

आरसी मदन गोपाल की कीजिये ।  
 देख, श्रुति, व्यास, शुकदास सब कहत निज,  
 क्यों न दिन कष्ट रस-सिग्धु को पीजिय ॥  
 अगर करि धूप पुमफुम मलय रजित-  
 मय बतिका घृत सो पूरि राखी ।  
 पुसुम कृत मास मंदलास के भाल पर,  
 सिलख करि प्रगट यश क्यों न जायो ॥  
 भोग प्रभु योग भरि धार धरि कृष्ण प,  
 मुबित भुज दण्डपर घमर ठारी ॥

आघमन पान हित मिलत वपू र जल ।

सुभग मुख घास, कूल ताप जारी ॥

शब्द बु बुझि पणव घट कल घेणु रव ।

क्षत्तरी सहित स्वर सप्त नाचो ।

मनुज तम पाप घट वाय जनराज भज ।

सुख्य हरिवश प्रभु वयो न याचो ॥१८॥

पद

आरती कीजै श्याम सुन्दर की ।

नद के मग्हन राधिका वर की ।

भक्ति करि दीप प्रेम करि घाती ।

साधु सङ्गति करि अमुखिन राती ॥

आरती पूज जुवति पूष मन भागी ।

श्याम स्तोत्रा श्री हरिवश हित गाथे ॥१९॥

१८—पान हित—पीने के लिय, योग—योग्य; कूल ताप—  
अपन सम्पूर्ण यद्यप्य ताप, दाय—अपमर; याचो—  
याचना करो ।

१९—अमुखि राती—प्रतिदिन प्रचारित ।

राग गौरी

रही कौऊ काहू मर्नहि दिये ।  
 मेरे प्राण नाथ श्री श्यामा शपथ करी तूण छिये ॥  
 जे अवतार कदम्ब ममत्त है, परि दृढ़ अत जु हिये ।  
 सेऊ उमगि तमत मर्प्यादा, वन विहार रस पिय ॥  
 छोये रतन फिरत जे घर-घर कौन काम ऐसे जिये ।  
 ज श्रीहितहरिवश अनत सधु नाही बिन या रजहि लिये

१२०।

राग कल्याण

हरि रसमा राधा राधा रट ।  
 अति मधीन आतुर यदपि पिय कहियत है नागर नट ॥  
 संभ्रम द्रुम, परिरंभन फुलन, हूँदत कालिंदी तट ।  
 विसपत, हंसत विपीवत, स्वेवित सतु सीघत अंसुवन  
 वशीवट

००—रूण दिये—दृष्टता के साथ; कदम्ब—ममूद, अनत—  
 अन्य स्थान में, मधु—सुगंध, रजति लिये—भी पुन्दावन  
 की रत्न ।

०१—भ्रम—पुस्त; संभ्रम—दृष्टदृष्टता के साथ, परिरंभन—  
 आलिगम; विपीवत—दुग्धित टोना; स्पदत—पमीना  
 आमा, मधु—शौर प ।

अ गराग,परिधान वसन,सागत ताते शु पीत पट ।  
अ श्रोहितहरिवश प्रशसित श्यामा द प्यारी कंचन घट

॥२१॥

## राग कल्याण

साल की रूप माधुरी ननति निरखि नेकु सखी ।  
मनसिज मन हरन हास,सांमरी सुकुमार रासि ,  
नख सिख म ग अ गति वमंगि,सांभग साँव मखी ॥  
रंग मगी सिर सुरंग पाग सटक रही वाम भाग  
चप कली फुटिस अलक खीच-खीच रखी ।  
आपत दृग अदृग सोल कु छल महित कपाल,  
अवर वसन धीपति की छधि,बघों हू न जात सखी ।  
अमयव भुज वण्ड मूल पीन अस सानुकूल  
कनक निरूप ससि बुकूल, दामिनी धरयो ।

२१—परिधान वसन—पहिनन के कपड़ ; ताते—गरम ।

२२—मनसिज—कामदेव, हाम—हामी,सांभग मीब—सुन्दरता  
की मीमा;नखी—पाग करवी है,सुरङ्ग—साल;आपतदृग—  
बड़े बड़े नेत्र ;ओल—चंचल ;महित—सुरोभित दीपित—  
प्रकारा ; अमयव—अमय देने वाले , पीन—पुष्ट ,  
अंस—कंधे, निरूप—कमीटी; धरखी—दब गई,

उर पर मदार हार मुक्ता सर वर सुडार,  
 मत्त दुरद गति, तिघन की बेह वसा करखी ॥  
 मुकुलित घम नव किशोर, वधन रघन घित के घोर,  
 मधु रित्तु पिक शाव नूत मंजरी खखी ।  
 जं थी नटवत हरिवश गान, रागिणी कल्याण तान,  
 सप्त स्वरन कम, हते पर मुरलिका वरखी ॥२२॥

राग मत्तार

दोऊ जन भोजत अटके यातन ।  
 सघन पुत्र के द्वारे ठाड़े अम्बर सपट गातन ॥  
 सलित्त सलित्त रूप रम मीजी वूँद घघावत पातन ।  
 जय थीहितहरिवश परस्पर प्रीतम मिसवत रतिरस  
 घातन ॥२३॥

- १ — मदार = स्वर्गीय वृक्ष य वृक्ष, करणी = व्यापकित करली  
 मुकुलित वय = उत्ती हुई अवस्था, पिक शाव = चायस का  
 बरखा, नूत मंजरी = आम की मंजरी, नटवत = भाव  
 दिग्गता, कम = मधुर; वरणी = स्वर्ण की बरा की ।  
 २ — अम्बर = वायु, पातन = पक्षों के द्वारा ।

## बोहा

सबसों हित, निष्काम मति, घृम्बावन विभ्राम ।  
 श्री राघायत्सम लाल की, हृदय ध्यान मुख नाम ॥१॥  
 तनहिं राखि सतसग में, मनहिं प्रेम रस भेष ।  
 सुख चाहत हरिवश हित, कृष्ण कल्प तरु सेष ॥२॥  
 निकसि जु ज ठाढ़े भये, मुजा परस्पर अस ।  
 श्री राघायत्सम मुख कमल, निरखि नम हरिवश ॥३॥  
 रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अनफुटौ नैम ।  
 अवन फुटौ श्री अनसुनौ, बिन राधा यश बम ॥४॥



१—निष्काम मति = कामना रहित बुद्धि, विभ्राम = परम सुग ।  
 २—भव = भिगाय रखो, मव = सेवन करो ।  
 ४—अन = बिना ।

• श्री •



श्री सेवक-वाणी







ॐ ध्योहितहरिवशाघट्टो जयति ॐ

## \* श्री सेवक-चरित्र \*

सेवक सम सेवक नहीं परिनिर्णय प्रपात ।

श्री हरिवशा के नाम पुत्र, बानी सर्वस ज्ञान ॥

श्री सेवक बाणी के कर्ता रक्षिक विरोमणि श्री सेवक जी का जन्म गौड़वाने के पड़ा ॐ नामक ग्राममें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुलमें हुआ था। इनका नाम दामोदरदासजी था, और ये उनी गांव में रहने वाले धर्म परम मित्र श्री चतुर्मुज दासजी व साय मिसवर भगवद्धर्मा एवं सप्त-सेवा में अपने समय को व्यतीत करते थे। इनकी बुद्धि धर्मी कुशाग्र और सारासार विवेचिनी थी एवं वास्तविकता से ही ये भगवत्तत्त्व के अनुसंधान में बड़ी लगन और श्रद्धा से प्रवृत्त रहते थे। सद्गुरुओं के मनन एवं समय-समय पर उनके ग्राम में ध्यान करने सत्रों के समागम के द्वारा वे अपनी तत्त्व जिज्ञासा को पूरा करने की चेष्टा करते रहते थे। मन्त्र सम्प्रदाय के द्वारा उनको यह निश्चय ही गया था कि सद्गुरु को धरण ग्रहण बिना भगवत्तत्त्व का प्रत्यक्ष नहीं हुआ सकता। किन्तु जिसका गुरु बनाया जाय, इस बात का निराय वे नहीं कर पाते थे।

एक बार विपरण करते हुए श्रीचतुर्मुज व कुछ रक्षिक उग्रामक उनके ग्राम में पहुँचे। दोनों जिज्ञामु मित्रों ने उन

सोर्गों को सम्मान पूर्वक आश्रय दिया, और 'रसिकों' ने प्रभु-सेवा के कार्यों से निवृत्त होकर रात्रि के समय प्रीति पूर्वक प्रभु का यश-गान किया जिसमें श्री दयामा-दयाम की भक्ति की प्रधानता थी। दोनों यद्वासु मित्रों को यह यश-गान सुन कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ और इन दोनों की हृद् प्रीति देख कर रसिक-उपासकों ने इनके गुरु के सम्बन्ध में पूछा था। दोनों ने अपनी गुरु-भक्ति पर खेद प्रकाशित करते हुए रसिकों से कहा कि आप लोग जिसको बतावगे हम उन्हीं को गुरु मान लेंगे। रसिकों ने बताया कि इस समय श्रीवृन्दावन में गोस्वामी श्री हितहरिवंश ही सब रसिक-उपासकों के द्वारा प्रशंसित हो रहे हैं और फिर उन्होंने श्री हित महाप्रभु को मोक्षोत्तर रहन-सहन एवं अनन्य रसिकता का वरण उनको सुनाया। सब बातें सुनकर इन दोनों ने हृदय पूर्वक निश्चय कर लिया कि हम लोग भी हितप्रभु को ही अपना गुरु मान लेंगे।

रसिक-उपासकों ने फिर उनको श्री हरिराम व्यास जी के शिष्य होने की बात सुनाई। इससे दोनों मित्रों के मन में श्रीहित महाप्रभु की वरणा के प्रति पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो गया। किन्तु गृहस्थ के फन्दे से वे लोग जल्दी में निराल सड़े और इधर श्रीहितप्रभु अर्थात् हो गये। यह समाचार जब गढ़ा पहुँचा तब इन दोनों को परम बिरह का अनुभव हुआ और वे अत्यन्त व्याकुल रहने लगे। इसके बाद उन्होंने सुना कि श्री बनधर गोस्वामी इस समय श्री हित गान्धी पर विराज कर सोर्गों को पानद दे रहे हैं। अनुभू जदासजी ने सबक जी से कहा कि श्रीवृन्दावन चलकर श्रीवनधर जी को ही गुरु बना लें और जीवन सफल करें। सेवकजी ने कहा 'मैं तो स्वयं श्रीहितजी से ही दीक्षा लूँगा अन्यथा शरीर परिवर्तन कर दूँगा। यह सुनकर अनुभू जदासजी श्रीवृन्दावन को चल दिये और श्रीवनधरजी को शरण हो गये।

इधर सेवकजी ने अपने प्राणों की बाजी मयावर श्री हरिबोध नाम की रट सगाई और श्री हिनमहाप्रभु न कृपा करके स्वप्न में श्रीराधिकाजी से प्राप्त मन्त्र उमका प्रदान किया एवं श्री वृन्दावन और उसके समस्त बभब को उन्हें प्रत्यक्ष करा दिया। श्री सेवक जी धन्य हो गये और उनकी वाणी जाग्रत हावर श्री राधावल्लभ मास की निरय-नूतन छवि का बरान बन सगी। वन्तुमु जदामजी जब मन्त्र सफर श्रीवृन्दावन से सोटे तो उन्होंने अपने परम मित्र की उसी मन्त्र का जाप करने पाया जो उन्होंने श्री वनचन्द्र प्रभु से प्राप्त किया था। उनके बाद उन्होंने श्री सेवक-वाणी सुनी और गद्गद हाकर सेवकजी का चरण पकड़ लिया। इन वाणी में वन्तुमु जदामजी ने श्री हिन महाप्रभु के रस मुक्ताओं को प्रेम की झरोके में गुंथा हुआ देखा और उनको यह निश्चय होगया कि रसिक-उपामना के रहस्य का समझने के लिये इस वाणी के बिना काम नहीं चल सकता और जो इस वाणी का नहीं जानेगा रसिक उपामक उमकी बात नहीं माने।

सेवक वाणी के महि जान। तिनकी बात रसिक महि जान ॥

वृन्दावन में श्री वनचन्द्र प्रभु ने जब सेवक वाणी सुनी सब मयपजी को देखने को उनकी बड़ी प्रथम दृष्टि हुई और उन्होंने प्रण किया कि मैं जब सेवकजी का दण पाऊंगा तो अपने प्रभु का भण्डार सुटाऊंगा। यह निश्चय कर उन्होंने सेवकजी को पत्र लिखा और उनका वचन रितावर गोध्र धान का धातु किया। सेवकजी का जब पत्र मिला और उन्होंने श्रीवन्चन्द्रजी का प्रण सुना तो उनका प्रेमी हृदय चौप उठा। उनके पहुँचने पर प्रभु को मामली सुटानी जायगी दम समाधार का मुन कर वे दिग्गम हो गये। वे जब बरन कर

श्रीजो के दर्शन के लिये गये किन्तु श्री बलभद्र प्रभु ने उनको उनको "नेह मरी बितवनि" से पहचान लिया और भानन्द मग्न होकर उनसे मिले। सेवक जी ने उनके घरणों में गिर रखकर प्रापना की कि मेरे वाग्ण प्रभु की सामग्री सुटन न पावे किन्तु श्री बलभद्र प्रभु प्रण कर चुके थे और घन्त में यह मिलाय किया गया कि केवल प्रसादी भण्डार सुटाया जाय। श्री गुरु-घरणों का घर्मी के ऊपर इस प्रकार रोम्ना प्रकृत था। श्री बलभद्र प्रभु ने उसी समय यह भाशा दी कि भाविष्य में श्री चतुरासीजी एवं सेवक वाणी साय सिखीं जाय और साय ही इनका पाठ किया जाय। •

बोरसो घर सेवक वाणी । इक संघ तिघत बड़त गुणवाणी ॥

श्रीध्रुवदासजी अपनी 'मल्ल नामावली' में श्री सेवक जी के सम्बन्ध में कहते हैं वे भजन-सरोवर के हस्त हैं। श्री सेवक की धरावरी कौन कर सकता है जिन्होंने मन और वाणी के द्वारा एक व्रत धारण करके एकमात्र श्री हरिबद्ध को ही गाया है। श्री सेवकजी की ऐसी हृद टैप थी कि उन्होंने 'बद्ध' के बिना 'हरि' नाम भी नहीं लिया। वास्तव में वस्तु उसी को प्राप्त होती है जो एक व्रत रखा है।

सेवक की सम जो कर भजन-सरोवर-हस्त ।

मन-बद्ध हैं यदि एक व्रत गाये श्री हरिबद्ध ॥

बस बिना हरि-नाम हू तिपी न जाई ईक ।

बाई तोई वस्तु को बाक है व्रत एक ॥

• श्रीभयवत् मुनिजी हस्त सेवकजी के चरित्र का गद्य-व्याख्यान ।

श्रीवनचन्द्र प्रभु के गिष्य एव सेवक जी के समसाम-  
यित धरसाम वाम श्री नागरीदास जी ने सेवक जी की बन्धना  
करत हुए गाया है ।

प्रथम श्री सेवक पद गिर नाऊ ।

कृपा करी दामोदर मा प श्री हरिवंदा खरण रति पाऊँ ॥

गुण गभीर व्यास नन्दन के तुब परसाद कछुक यदा गाऊँ ।

नागरिदास के तुम ही सहायक रसिक मनन्य-नृपति मन भाऊँ ॥

गोत्रामी श्री हित इन्द्रमणिजी न ठीक ही पहा है कि-  
राधावर माम-सी न कृन्दावम धाम-सी

न सेवक-सी सेवक न गुसाई हरिवं-सी ।

## ॐ श्री सेवक वाणी के कुछ उपदेश ॐ

१—श्री हरि घोर हरिवंश में कोई भेद नहीं है जिस  
प्रकार प्रभु घोर ईश्वर एव ही वस्तु क दा नाम है उसी प्रकार  
हरि घोर हरिवंश भी एव हैं । इनको दो मानने से घमयता  
नहीं रहनी ।

२—श्री हित प्रभु ने सब भक्तों की गर ह्री रीति पतमाई  
है—प्रीता-प्रणव गुण-रवन एवं नाम-स्मरण में हृड  
विश्राम रगता । इस रीति को ग्रहण किये बिना भक्ति उभय  
नहीं होनी ।

३—श्री हित प्रभु ने सुमार के भोगों का बन्धाया कि  
आ रम रीति मय म दूर एवं दुगम है बही मय विश्व म भङ्गपूर  
है घोर वही मजीवनता पा मूम है ।

४—श्री हित प्रभु की कृपा से जब मनुष्य का मन इस रस रीति से मग्न होता है तब उसकी भय भास से रक्षा हो जाती है और उसको निर्भयता प्राप्त हो जाती है।

५—श्री हरिबंद नाम का जप करते-करते जब उस नाम का प्रभाव मनुष्य के हृदय में प्रकट होता है, तब वह तृण से भी अपने को नीचा समझने लगता है। वह कभी अपने समय को व्यर्थ नहीं ग्योता। सत्कार की श्रुति किंवा अशुभ बातों का उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह श्री हरिबंद के रस-धर्म को धारण करने वाले रसिक जनों को सब से अधिक प्रिय वस्तु मानने लगता है।

६—श्री हरिवंदा का नाम ही धन का प्रकट रूप है। श्री हरिबंद के नाम में सम्पूर्ण सिद्धियाँ हैं और रसिक जब अपने भरण पोषण की चिन्ता छोड़ कर इनका उपभोग परत रहते हैं। श्री वृन्दावन का सम्पूर्ण विश्वास श्री हरिबंद नाम का ही वैभव है।

७—श्री हरिबंद की उपासना की रीति यह है कि उग्रम श्री श्यामा-श्याम का गान एक साथ किया जाता है। यह दोनों एक प्राण दो गेहूँ हैं और इनमें कभी एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता। इन दोनों में श्री श्याममुन्वर धाराधक हैं और श्री राधाश्री धाराध्य हैं। यह दोनों सन्निताम्बि सहस्ररी गण के साथ रह कर सुन का उपभोग करते रहते हैं और श्रीहरिबंद इनकी परस्पर प्रीति का गान करते रहते हैं।

८—श्री हरिवंदा के गान बिना वागी में श्री वृन्दावन की सुन्दरता, श्रीश्यामा-श्याम का कसि-बिसास, वरद एवं वसन्त

श्रुतु की रासलीला एवं श्री दयामा द्याम की सुरक्षात छवि का वगुन है।

६—श्रीहरिवंश के नाम एवं वाणी व निबट्ट श्री दयामा द्याम मदक प्रगट रहते हैं। श्री हरिवंश के नाम श्री वाणी धरयन्त माधुय-पूण श्रीर प्रेम रस का दाम करने वास है श्रीर दयामा-दयाम सबया इनके वस है।

१०—श्री हरिवंश की वाणी का प्रभाव तब प्रगट हुना है जब मनुष्य सांसारिक पक्षियों से घागा करना छाट दता है सबया निम्नार्थ होकर जन्म-मरण निवा मुग्ध-दुग्ध श्रीर धरने वस्वित सम्बन्धा की ताड़ देता है श्रीर श्री हरिवंश व नाम में अन्तर पढन का एक मात्र हानि एव श्री हरिवंश व वाणी व रसास्वाद की एक मात्र साध समझन सगता है।

११—श्री हरिवंश के अन्तर्ग मधुर गुण हैं। श्री हरिवंश ही उपागक है श्रीर वही उपास्य है। वही कारण है श्रीर वही वाय है। बार घटारों वाने श्री हरिवंश नाम व जाप मे सम्पूर्ण सिद्धिया प्राप्त हाती है श्रीर भवसागर से उद्धार हो जाता है।

१२—जिन सागों के निचे परम प्रेम-स्वरूप श्री दयामा द्याम का प्रेम ही एक मात्र मुग्ध श्रीर सम्पति है वे सब श्री हरिवंश नाम की उपासना करत है क्योंकि श्री हरिवंश नाम के जब से श्री राधिका दयाम मदक प्रसन्न रहत है।

१३—श्री हरिवंश की रस रीति में श्री वृन्दावन, श्री सह्य परी गण श्री द्यामगुप्तर, एवं श्री वृषभानु नम्बिनी परम्पर-



तत्सुखमयी प्रीति में भाग्य होकर सोक एव वेदकी मर्यादाओं से प्रतीत परम प्रेममयी क्रीड़ा म प्रवृत्त हैं ।

१४—श्री हरि को प्रेम-स्वरूपता प्रदान करने वाली उनकी बन्दी है । बन्दी से ही सम्पूर्ण रास-विभास का उत्पन्न है, अनन्व में ( सवक जी ) त्रिमोकुम सिरोमणि श्रीहरि' नाम की भी 'वदा क विना सने को तयार नहीं हू । मैं सब श्री हरिवन्द को ही ग्रहण करूँगा ।

१५—अनन्व प्रेमियों के मजन में अन्तर्यामी स्वरूप की उपासना को प्रवृत्त नहीं है क्योंकि प्रगट रूप ही प्रीति का प्राथम बन सकता है । प्रगट रूप में सब से शुद्ध रूप वह है जो श्री कृष्णवन में निरत्य रास क्रीड़ा म निमग्न है ।

१६—श्री हरिवन्द नाम की सुदृढ़ उपासना तब बनती है जब श्री हरिवन्द का नाम सुनाने वाली पर उनकी उपासकों की सेवा करने वाली पर, उनकी बाली का गान करने वाली पर एवं उनके धम की शीला देने वाली पर सर्गम्ब स्वीकार कर दिया जाता है ।

१७—उपासक के हृदय में श्री हरिवन्द को कृपा का उदय तब समझना चाहिये जब वह जोक मात्र क प्रति प्रीति रूप कर अपनी रस प्रीति का निर्वाह करने लग, जब सोसा-धमण एवं गुण-बयन में उसका दृढ़ विश्वास हो जाय । गन्ध-मिन्न मान-प्रयमान, दुग्ध-मुक्क और साम-हानि को वह बराबर समझने लग और जब अपने सहपरमियों क गाय मितरर बढ़ एक मात्र प्रीति-रग पकाने में लग जाय ।

१८—उपासक के ऊपर जब श्री हरिवंश की कृपा बरसती है तब श्री राधावल्लभ सास के नित्य प्रेम-बिहार का दायम बरके उसका रोम-रोम पुलकित हो जाता है और उसकी धाँसों से धाँसुषा की धारा बहने लगती है। प्रेमावेग में बभी बह रोता है, बभी साता है और बभी मट्टहास करने लगता है। वह बभी श्री दयाम स्यामा क साथ बिहार करता है, बभी प्रेम-पूवक उनक दशन करता है और कभी उनक यदा का गान करता है। कृष्ण के छिद्रों में से प्रकृत युगल स्वरूप का धवन करके उसक नेत्रों को सृति नहीं होती।

१९—श्री हरिवंश के प्रसिद्ध धम को धस्य पुष्य वाला मनुष्य नहीं समझ सकता। इस धम के समझने के लिये धमियों का ( इस धम का पासन करने वालों का) सबन किया जाता है और इष्ट मन्त्र की तरह उन ही का जप किया जाता है, क्योंकि धर्मों के बिना धम की स्थिति नहीं है और धम क बिना धर्मों का अस्तित्व नहीं है। श्री हरिवंश की कृपा से इस धम की समझदार लोग ही समझते हैं और वे सब प्रपञ्च छोड़ कर धमियों से प्रीति करके उनकी धरण ग्रहण करते हैं।

२०—जहाँ श्री हरिवंश का नाम है, वहाँ सदन उदारता निवास करती है, उम जगह मकामता का प्रवेग नहीं होता और कृपासुता छाई रहती है। जो श्री हरिवंश क नाम म लीन रहते हैं, उनका ममार में कोई धम नहीं रहता और प्रपञ्च दम्भ धार्मिक उतम महा दम जाने। जो श्री हरिवंश का नाम धते हैं वे धनम सुग का भोग करते हैं और प्रेम की धयम्भ दुस्ह दगावें उनम प्रत्यण रूप मे दगो जानी हैं।

२१—प्रधानी उगामर सब मार-म्बर्य श्री हरिवंश नाम का दाइ कर धान मिर पर धियों का धय भार साथ

सेते हैं और राजसी वैभव को देखकर उसकी ओर सिध जाते हैं। ऐसे लोगों को साधु-संग तो भार-स्वल्प निश्चार्ई देता है, और मान-प्राप्ति के लिये राजसी-भृति के लोग का मुह ताकते रहते हैं। ऐसे लोग अपने को सखी-भाव का तो उपासक बतलाते हैं और हर जगह का भ्रम ग्रहण करके सारा दिन सड़ाई मगाड़े में बिताते हैं और रात भर साते हैं। अहो ! यह लोग श्री व्यासनन्दन के प्रसिद्ध नाम को जान बूझ कर छोड़ देते हैं और अपने जन्म को व्यर्थ में ही गया देते हैं।

२२—सब उपासक का श्री हरिकेश नाम के साथ परिषय होता है तब उसमें धूर्तों जसी सतृन भीमता आजाती है। उसकी सब सोच परम उदार कहन लगते हैं यह अपने मन में कभी कोई सोच-विचार नहीं करता और सब अपने मन को श्री हरिकेश के क्लित्त में लगाय रखता है। वह सदैव सब को सुख देने वाले कोमल बचन बोलता है और कभी उसके मुख से दुःखदाई बचन नहीं निकलते।

२३—महा शक्ति वाली श्री हरिकेश नाम हृदय में प्रगट होने पर मदन के मोह का मद एव दम्भ का दम दमित हो जाता है। अथ समीठ होकर भाग जाता है और गर्व का धर्मिमाग खण्डित हो जाता है। मोम कोप बपट पात्कण्ड प्रादि नष्ट होजाते हैं। कृपणा प्रपञ्च, भस्वर और व्यगम निवम हो जाते हैं और शुभ घणुम स्त्री दुग ( रिवा ) का नाग होकर संसार में जय जयकार होने लगता है।



ॐ श्री हितपायी विजयते ॐ

# ★ श्री सेवक-वाणी ★

ॐ अथ श्रीहित जसविलाम ॐ

( पितो पद )

श्रीहरिवश घन्र शुभ नाम ।

सब सुख सिधु प्रेम रस घाम ।

जाम-घड़ी<sup>१</sup>, बिसर नहीं ॥

यह जु परधी मुहि सहज नुभाव ।

श्रीहरियग नाम रस घाव ।

नाव<sup>२</sup> सुदृढ़ भव तरन कों ॥

नाम रटत भाई सय सोहि<sup>३</sup> ।

वेह सुबुद्धि कृपा कर मोहि ।

पोइ सुगुन माला रघों ॥

नित्य सुफठ जु पहिरोँ साग<sup>४</sup> ।

जस घरनो हरियग चित्तास ।

श्रीहरियगहि गाइहोँ ॥१॥

श्रीवृन्दावन बंभव जितनी<sup>१</sup> ।

धरमत बुद्धि प्रमानों<sup>२</sup> कितनी ।

तितनी सब हरिवश की ॥

सखी सखा क्यों कहीं निवेर<sup>३</sup> ।

सौ मेरे मन की भवसेर<sup>४</sup> ।

टेरि सकत प्रभुता<sup>५</sup> कहीं ॥

हरि-हरिवश भेव नहि होइ ।

प्रभु-ईश्वर जानें सध कोइ ।

बोइ कहे न अनन्यता ॥

विषवभर सब जग भ्रमास<sup>६</sup> ।

अस धरनीं हरिवश विलास<sup>७</sup> ।

भीहरिवशहि गाइ हों ॥ २ ॥

जन्म कम गुण रूप अपार ।

वाढ़ें कया कहत विस्तार ।

धार धार सुमिरन करी ॥

हों सधुमति जु अन्त महि सहों ।

बुद्धि प्रमान कछु कपि<sup>८</sup> कहीं ।

रहों शरण हरिवश की ॥

१ जितनी २ माप नहीं कर सकती, ३ घसग-घसग करने  
 ४ उखावट, ५ ऐश्वर्य, ६ प्रपात ७ झीड़ा, ८... छुट्टा रचना  
 करने

सोपों कहि मोहि केतिक<sup>१</sup> मती<sup>२</sup> ।  
 अस घरनत हारं सरस्वती ।  
 तित्ती सब<sup>३</sup> हरिवश की ॥

बेहु कृपा करि बुद्धि प्रकास ।  
 अस घरनी हरिवश विलास ।  
 श्रीहरिवशाहि गाइ हौं ॥ ३ ॥

कलिजुग कठिन<sup>४</sup> वेद-विधि रही ।  
 धम कहूँ नहि दीक्षत सही<sup>५</sup> ।  
 कही भली कोउ ना कर ॥

उदयस<sup>६</sup> विश्व भयो सब देस ।  
 धम रहित मेविनी-नरेस<sup>७</sup> ।  
 म्लेच्छ सकल पहमी<sup>८</sup> बड़े ॥

मय जन करहि भाषुनिक धम ।  
 वेद-विहित जानै नहि कम ।  
 मम भक्ति को क्यों सहें ॥

बूढत भव धाव न उतास<sup>९</sup> ।  
 अस घरनी हरिवश विलास ।  
 श्रीहरिवशाहि गाइ हौं ॥ ४ ॥

१ जिनगी, २ बुद्धि ३ उतनी मय ४ हिष्ट कम बाँद मय,  
 ५ मुद्ध ६ सारहीन ७ पृथ्वीके राजा लोग ८ पृथ्वी,  
 ९ स्वासा,

धम रहितुं जानी सब बुनी<sup>१</sup> ।  
 स्लेच्छमि भार बुझित भेविनी<sup>२</sup> ।  
 धनी<sup>३</sup> धीर बुजो<sup>४</sup> नहीं ॥  
 करी कृपा मन कियो विचार ।  
 श्रुतिपषविमुख<sup>५</sup> बुझित ससार ।  
 सार येव विधि उढरी<sup>६</sup> ॥  
 सब भवतार भक्ति विस्तरी ।  
 पुनि रस रीति जगत उढरी ।  
 फरघो धम अपनो प्रगट ॥  
 प्रगटे ज्ञान धम को नास ।  
 अस वरनो हरिवश विनास ।  
 श्रीहरिवशहि गाइ हौं ॥ ५ ॥  
 मधुरा मडस भूमि आपनी ।  
 अहां बावळ प्रगटे जग धनी ।  
 भनी<sup>७</sup> भवनि घर आप मुख ॥  
 शुभ यासर शुभ अख<sup>८</sup> विचार ।  
 माधव मास ग्यास<sup>९</sup> उजियार<sup>१०</sup> ।  
 नारिनु मगस गाइयो ॥

१ संसार २ पृच्छो ३ मासिक, ४ दूमरा ५ वेद मार्ग  
 म विमुख ६ बर्षों की सार रूप भक्ति का उद्धार किया  
 ७ कही ८ ग्रह मन्त्र, ९ एकादशी १० दाऊ पदा की

० यह नाम कृदावन मे १४ बीत की दूरी पर श्रीराधाबल्लभ्रीय  
 गङ्गाय प्रवत्त रु श्रीद्विहरिवश महाप्रभु का प्राकट्य-स्थल है ।

सञ्चिन्' वेव बुदुमी बाजिये ।

ज-ज सव्व सुरनि मिति किये ।

हिये सिराने' सवनि के ॥

तारा जननि' जनक' श्रुपि व्यास ।

जस धरनों हरियण यिलास ।

धोहरियणहि गाइ हों ॥ ६ ॥

धोभागवत् जु शुक उच्चरी' ।

ससो विधि जु व्यास विस्तरौ ।

करो नव जसो हूती ॥

घर घर तोरन' धदनवार ।

घर घर प्रति चित्रहि दरवार' ।

घर-घर पच सव्व बाजिये ॥

घर घर धान प्रतिग्रह' होइ ।

घर घर प्रति नितत सब कोइ ।

घर घर मंगल गावहीं ॥

घर घर प्रति प्रति होत हुसास ।

जस धरनों हरियण यिलास ।

धोहरियणहि गाइ हों ॥७॥

१ उमा दाम २ वाताम हृण, ३ मा ४ मित्रा

५. बगन बा ६ शर ७ शर पर मगन निव बनाण गव

८. दान सना ।



निचल सजल सरोवर भये ।

उखटे<sup>१</sup> वृषामि पत्सव मये ।

वए सकल सुख सवनि कौं ॥

असम<sup>२</sup> सन सुख नित नित नये ।

अन्न सुकाल खट्टे<sup>३</sup> विसि भये ।

गये अशुभ सब विष के ॥

म्लेच्छ सकल हरि अत विस्तरहि ।

परम खलित बानी उच्चरहि ।

करहि प्रजा पावन सब ॥

अपनी अपनी रुचि-यस वास<sup>४</sup> ।

जस धरमो हरिबदा विसास ।

श्रीहरिबदाहि गाइहो ॥ ८ ॥

खलाहि सकल जन अपने घम ।

ब्राह्मण सकल करहि पट कम ।

अम<sup>५</sup> सवनि कौ भाजियो ॥

छूटि गई कसियुग की रीति ।

नित नित नव-नव होति समीति<sup>६</sup> ।

प्रीति परस्पर अति बढ़ी ॥

प्रगट होत ऐसी विधि भई ।

सब भवजनित<sup>७</sup> आपदा<sup>८</sup> गई ।

मई-नई रुचि अति बढ़ी ॥

१ अकृति हुए २ भाजन ३ रहन महन, ४ अम

५ प्रेम ६ संसार के द्वारा उत्पन्न की हुई ७ बिनति ।

सब जन करहि धम-अन्यास ।  
जस घरनी हरिवश-विस्वास ।  
धोहरिवगहि गाइहो ॥ ६ ॥

खाल विवोध न धरनत धरनिह ।  
अपनी-सी<sup>१</sup> उपवेशत मनहि ।  
गनहि कवन<sup>२</sup> सीला जितो<sup>३</sup> ॥

सब हरि-सम<sup>४</sup> गुन रुप अपार ।  
महापुण्य प्रगटे ससार ।  
मार-विमोहन<sup>५</sup> तन धरघो ॥

धिन न मृपित दुन बरगन आस ।  
दुसरावत घोसत मृदु हास ।  
ध्यासमिथ की साटिलो ॥

मुवित सकल नहि छाँडत पाम ।  
जस घरनी हरिवग-विस्वास ।  
धोहरिवगहि गाइ हो ॥ १० ॥

अब उपवेश भक्ति की कह्यो ।  
जसी विधि जाके चित रह्यो ।  
तह्यो नु मनवाँधिन सफल ।

१ धरनी समस्त ५ धनुमार, २ बीन ३ शिखरी  
४ समान ५ कामन्द का मार्गिक बन्ध बना

सब हरिमक्ति कही समुझाइ ।  
 जैसी-जैसी चाहि सुहाइ ।  
 भाइ सकल घरननि भजे १ ॥  
 साधन सकल कहे अविच्छेद २ ।  
 वेद-पुरान सु भागम शुद्ध ।  
 बुधि-विशेष जे जानहीं ३ ॥  
 समुझ्यो सबनि सु भक्ति-उपास ४ ।  
 जस घरनों हरियश-बिसास ।  
 श्रीहरियशहि गाइ हों ॥११॥  
 अथ अथतार-भेद तिन कहे ।  
 सकल उपासक तिन मन रहे ।  
 कहे भक्ति-साधन सब ॥  
 मयुरा नित्य कृष्ण को धास ।  
 निशि दिन स्याम न छूड़ित पास ।  
 तामु ५ सकल सीला कही ॥  
 कही सबनि को एक रीति ।  
 अवन-कथन-सुमिरन परतीति ६ ।  
 बीति काल सब जाइयो ॥  
 उपज्यो सबनि सुदृढ़ विस्वास ।  
 जस घरनों हरियश-बिसास ।  
 श्रीहरियशहि गाइ हों ॥१२॥

---

१ सेवन करन सगे २ बिराध हीन ३ प्रकाश  
 ४ जनकी ५ बिभास ।

भव जु कही सब व्रज की रीति ।

जैसी सबनि नद-सुत प्रीति ।

कीति सकल जग विस्तरौ ॥

बाल-चरित्र प्रेम की नौब' ।

कहत-सुनत सब सुख की सौब' ।

जीवन अज-बासिनु सफल ॥

अज की रीति सु अगम अपार ।

विस्तरि कही सकल सत्तार ।

कारज सबहिनु के नये ॥

अज की प्रीति रीति अनियास' ।

जस घरनों हरिबन यिलास ।

श्रीहरिबगहि गाइहौ ॥ १३ ॥

जैहि विधि सकल भक्ति अनुसार ।

सैसी विधि सब कियो विचार ।

सारासार विषेकि कैं' ॥

अथ निजु' धर्म आपनों कहत ।

तहाँ नित्य वृदावन रहत ।

वहत प्रेममागर जहाँ ॥

१ आपाग १ मोमा, ३ सद्ग यिना चेष्टा किये  
४ विशेषन परके, ५ अहं ।

साधन सकल भक्ति जा तनों' ।  
 निजु-वैभव<sup>२</sup> प्रगटत आपनों ।  
 मनो<sup>३</sup> एक रसना कहा ॥  
 श्रीराधा जुग चरन निवास<sup>४</sup> ।  
 अस धरनों हरिवश-विलास ।  
 श्रीहरिवंशहि गाइहों ॥ १४ ॥  
 इति श्रीहित बस-विलास प्रकरण ॥१॥

### ॐ अथ श्रीहरिवश रस-विलास प्रकरण ॐ

( विपरी घन )

श्रीहरिवंश नित्य धर केसि<sup>५</sup> ।  
 काढ़त सरस प्रेम रस घेसि ।  
 भेसि<sup>६</sup> कंठ भुज खेस ही ॥  
 धमितनि-मान मन अधिक सिरात<sup>७</sup> ।  
 निरखि निरखि लोचन न अघात<sup>८</sup> ।  
 गात गौर साबल बने ॥  
 जूय-जूय जुवतिनु के घने<sup>९</sup> ।  
 मध्य किशोर किशोरी बने ।  
 गने कयन<sup>१०</sup> रति<sup>११</sup> अति बढ़ी ॥

१ प्रसन्न २ सहज वभव, ३ बहूँ, ४ स्मिति,  
 ५ श्रेष्ठ प्रेम-कीड़ा ६ डाल कर, ७ गीतम हाते हैं  
 ८. लृप्त होते, ९ घनक १० कौन अनुमान लगावे, ११ प्रेम ।

मित-नित लीला, नित-नित रास ।

सुनहु रसिक<sup>१</sup> हरियश विलास ।

श्रीहरियशहि गाइहो ॥ १ ॥

सता-भवन सुख शीतल छर्हा ।

श्रीहरियश रहत नित जर्हा ।

तर्हा म वभव धाम की<sup>२</sup> ॥

जब-जब होत धर्म की हानि ।

तब-तब तनु घरि प्रगटत धानि<sup>३</sup> ।

जानि धीर बूजी नहीं ॥

जो रस-रोति सयन तें पूरि ।

सो सय विषय रही भरपूरि ।

मूरि<sup>४</sup> सजीवन<sup>५</sup> कहि दर्ई ॥

सब जन मुदित करत मन हास ।

सुनहु रसिक हरियश विलास ।

श्रीहरियशहि गाइहो ॥ २ ॥

ससिताविक श्यामा अरु श्याम ।

श्रीहरियश प्रेम रस धाम ।

नाम प्रगट जग जानिये ॥

१ रस के पासवान् २ दूररे की, ३ धार ४ जड़ी  
५ जीवम प्रदान करने वाली ।

श्रीहरिवश-जमित' जहाँ प्रेम ।

तहाँ कहीं घत समय नेम ।

धैर्य' सकल, सुख-सम्पदा ॥

तहाँ जाति-कुस नहीं विचार ।

कौन सु चसम, कौन गँवार ।

सार भजन हरिवश की ॥

या रस मगन मिटे भव त्रास' ।

सुमहु रसिक हरिवश-बिसास ।

श्रीहरिवशाहि गाइहो ॥ ३ ॥

श्री हरिवश सुजस' गाइयो ।

सो रस सब रसिकनि पाइयो ।

कियो सुकृत' सबकी फल्यो' ॥

या रस में विधि नहीं निषेध' ।

तहाँ न लगन' ग्रहन' के वेध' ।

तहाँ कुबिन बिन कस्यु नहीं ॥

नहि शुभ-अशुभ, मान-अपमान ।

नहि अनृत, ' भ्रम, कपट, सयान' ।

स्नाम-क्रिया, जप-तप नहीं ॥

१ श्रीहरिवश के द्वारा उलान्न किया हुआ २ कुशल

३ जन्म-मरण का दुःख, ४ श्री श्यामा श्याम का राम-विभाग

५ पुण्य, ६ फल देने लगा, ७ कतम्य और अकतम्य, ८ मेघा

दिक बारह सान, ९ सूर्यास्तिक तपग्रह १० प्रवण, ११ असुख्य

१२ पतुराई ।

ज्ञान ध्यान तहाँ सकस प्रयास<sup>१</sup> ।

सुनहु रसिक हरिवश यिलास ।

धीहरिवशहि गाइहो ॥ ४ ॥

जहाँ हरिवश प्रेम-उन्माद<sup>२</sup> ।

तहाँ कहीं स्वारय निस्वाद<sup>३</sup> ।

याद विवाद तहाँ नहीं ॥

जे हरियग-नाद<sup>४</sup> मोहिये<sup>५</sup> ।

तिनि फिर बहुरि न कुल-क्रम किये ।

जिये कास-वस ना परे ॥

कुल बिनु कहीं कौन-सी घाक<sup>६</sup> ।

सहज प्रेम रस सचि पाक<sup>७</sup> ।

रक-ईग<sup>८</sup> समुक्त नहीं ॥

विप्र न शूद्र बोन कुल बास<sup>९</sup> ।

सुनहु रसिक हरिवश यिलास ।

धीहरियगहि गाइहो ॥ ५ ॥

या रस विमुक्त करत आघार ।

प्रेम बिना जुसब कृत<sup>१०</sup> झार<sup>११</sup> ।

नार धरत यत्<sup>१२</sup> विप्र<sup>१३</sup> की ॥

१ परिश्रम २ मत्तता ३ घान-हीन ४ बासी

५ माहिन ह्य ६ शक विवाद घान साक ७. बह होना,

८ गरीब समीह, ९ विपना, १० कम ११ बाटन यातो

बरोही १२ बनों १३ बाल्यग ।



श्रीहरिवंश किशोर<sup>१</sup> अहीर<sup>२</sup> ।  
 अरु तिन सग बनितम<sup>३</sup> की भीर ।  
 तीर जमुन नित खेसहों ॥  
 तिम की बई खु झूठन खात ।  
 आघारो<sup>४</sup> निज<sup>५</sup> कहत खिस्यात<sup>६</sup> ।  
 घात यहै साघी सदा ॥  
 श्रीहरिवंश कहत नित जास<sup>७</sup> ।  
 सुनहु रसिक हरिवंश विलास ।  
 श्रीहरिवंशहि गाइहों ॥६॥  
 निशिखिन कहत पुकारि पुकारि ।  
 स्तुति करहु वेहु कोठ गारि ।  
 हारि न अपनी मानि हों ॥  
 श्रीहरिवंश-घरण महि तजों ।  
 अरु तिनके भजसनि<sup>८</sup> कों भजों ।  
 लखों नहीं अति निदर ह्वं ॥  
 श्रीहरिवंश नाम-बल लहों ।  
 अपने मन भाई सब बहों ।  
 रहों शरण हरिवंश की ॥

१ श्री द्यामाय्याम, २ शत्रिय ३ शिष्यों की, ४ आचार-  
 विचार करने वाले, ५ अपने को, ६ मन्त्रित होने हैं ७ जिसको  
 ८ भजन करने वाले ।

कहत न बनत प्रेम-उज्जास ।

सुनहु रसिक हरिवश-विज्ञास ।

श्रीहरिवशाहि गाइ हों ॥७॥

जे हरिवश प्रेम रम भित्ते<sup>१</sup> ।

क्यों सोहें<sup>२</sup> सोगनि में मिले ।

गिह्यो-काल<sup>३</sup> जग देखिये ॥

कम सफाम न कबहूँ करे ।

स्वग न इच्छे, मक न डर ।

घर घम हरिवश की ।

श्रीहरिवश घम निबहें<sup>४</sup> ।

श्रीहरिवशा प्रेम रस सहै ।

ते सय श्रीहरिवश के ॥

‘सेवक’ तिन दासनि की दास ।

सुनहु रसिक हरिवश विज्ञास ।

श्रीहरिवशाहि गाइहों ॥ ८ ॥

इति श्रीहरिवश रम-विशाम प्रकरण ॥७॥



१ भोग २ गोभा पाने हैं, ३ पाव-द्रवित,  
४ निर्बाह करत हैं ।

## ॐ अथ श्रीहरिवश-नाम-प्रताप जस ॐ

( त्रिपदी छन्द )

श्रीहरिवश नाम नित कर्हो ।

नाम प्रताप नाम—फल लर्हो ।

नाम हमारी गति सखा ॥

वे सेवे हरिवश सुमाम ।

पाव तिन चरणनि विभाम ।

नाम—रटन सतत करे ॥

नाम प्रसङ्ग<sup>१</sup> कहत उपवेश ।

बहो यह धम धम्य सो वेश ।

धाय सुकुस बेहि जन्म भयो ॥

धन्य सुखात धन्य सो माइ ।

संसत रसिक सुमहु चित लाइ ।

श्रीहरिवश—प्रताप जस ॥१॥

प्रथम हृदय थडा जो कर ।

प्राधारजनि आइ प्रमुसर<sup>२</sup> ।

जहाँ-जहाँ हरिवश के ॥

रसिकनि की सेवा जय होइ ।

प्रीति सहित बूझहु<sup>३</sup> सब कोइ ।

कोन धम हरिवश को ॥

ॐ तृतीय प्रकरण ॐ

कौन सुरोत्ति, कौन प्राचरन ।

कौन सुष्टुत ओहि पार्वं शरन ।

क्यों हरिवश कृपा कर ॥

सब सब धम कही समुभाइ ।

सन्तत रसिक सुनहु चित लाइ ।

श्रीहरिवश-प्रताप जस ॥२॥

प्रथमहि जेबहु गुरु के धरन ।

जिन यह धम कही सब करन ।

नाम-प्रताप घताइयो ॥

जो हरिवश नाम अनुसरहु ।

निशिदिन गुरु को सेवन करहु ।

सकल समपन प्राण धम ॥

गुरु-सेवा तजि करहि जे जानि<sup>१</sup> ।

यहै प्रथम, यहै सब हानि ।

जानि<sup>१</sup> न रसिकनि में रहै ॥

गुरु-गोपित न भेद बराइ ।

सन्तत रसिक सुनहु चित लाइ ।

श्रीहरिवश-प्रताप जस ॥३॥

गुरु-उपदेश सुनहु सब धम ।

श्रीहरियग नाम-फल-मम ।

जम भायो बचननि सुनत ॥

१ भाषी प्रकार बनाकर, ७ प्रतिष्ठा ।

शुक-मूख-वचन<sup>१</sup> सु भवन सुनावहु ।  
 तब श्रीहरिगंज सुनाम कहावहु ।  
 मम सुमिरन बिसर नहो ॥  
 हरि-गुह धरए सेवा अनुसरहु ।  
 धर्षन-धरम सतत करहु ।  
 वासतन करि सुख नहो ॥  
 सख्य-समपन भक्ति बढ़ाइ ।  
 संतस रसिक सुनहु छित लाइ ।  
 श्रीहरिवश - प्रताप जस ॥४॥  
 गुरु-उपवेश चलहु यह घास ।  
 ऐसी भक्ति करहु घटु बाल ।  
 ये नब सखन भक्ति के ॥  
 यह हरि-भक्ति करे जब कोइ ।  
 तब हरियस नाम रति होइ ।  
 यह जु बहुत हरि की कृपा ॥  
 हरि-हरिवश भेद नहि करे ।  
 श्रीहरिवश नाम उचर<sup>२</sup> ।  
 छिन छिन प्रति बिसर<sup>३</sup> नहो ॥  
 प्रीति सहित यह नाम कहाइ ।  
 संतस रसिक सुनहु छित लाइ ।  
 श्रीहरिवश प्रताप जस ॥ ५ ॥

गुद-उपवेश चलहु एहि रीति ।  
 श्रीहरिवश नाम-पव प्रीति ।  
 प्रेम - मूल यह नाम है ॥  
 प्रेमी रसिक जपत यह नाम ।  
 प्रेम-भगन निजु घन<sup>१</sup> विग्राम<sup>२</sup> ।  
 श्रीहरिवग जहाँ रहै ॥  
 प्रेम - प्रवाह परं जन सोइ<sup>३</sup> ।  
 सब क्यों लोक-खेव सुषि होइ ।  
 जब हरिवश कृपा करी ॥  
 वत-सयम सब कौन कराइ ।  
 सतत रसिक सुनहु चित लाइ ।  
 श्रीहरिवग - प्रताप जस ॥६॥  
 जब यह नाम हृदय आइ है ।  
 सब सब सुख-सम्पति पाइ है ।  
 श्रीहरिवग - सुजस कहै ॥  
 अरु अपनी प्रभुता नहि सहे<sup>४</sup> ।  
 नून तं नीच अपनपो<sup>५</sup> कहै ।  
 शुभ अरु अशुभ न जानही ॥  
 समुक्त नहीं कछु कुल-कम ।  
 सूयो चल आपने घम ।  
 रसिकन सौ प्रीतम कहै ॥

१ श्रीवृंदावत २ म्पिति ३ जा, ४ महन करं, ५ धरने धारणे ।

कबहुँ काल कृपा नहि जाइ ।

सतत रसिक सुनहु चित लाइ ।

श्रीहरिवश प्रताप अस ॥ ७ ॥

जब श्रीहरिवश-नाम जानि है ।

तब समझी तें लघु मानि है ।

हंसि बोल बहू मान ब ॥

सब-सम सहन शीलता होइ ।

परम उधार कहें सब कोइ ।

सोच न मन कबहुँ करै ॥

श्रीहरिवश सुमस मन रहै ।

कोमल बचन रचन' मुख कहै ।

परम सुख सब को सदा ॥

बुझब बचन कबहुँ न कहाइ ।

सतत रसिक सुनहु चित लाइ ।

श्रीहरिवश प्रताप जस ॥८॥

प्रगट धम असे जानिये ।

श्रीहरिवश नाम जा हिये ।

नाम सिद्धि पहिचानिये ॥

श्रीहरिवश नाम सब सिद्धि ।

सब रसिक बिससैं नव निद्धि ।

भुगसैं,<sup>१</sup> बँहि<sup>२</sup>, न जाचहीं ॥

पोषन भरन न चित' कराहि ।

श्रीहरियश विभय विलसाहि<sup>१</sup> ।

धृन्वापन को माधुरी ॥

गुन गावत जु रसिक सचु पाइ ।

सतत रसिक सुनहु चितलाइ ।

श्रीहरियश प्रताप जस ॥६॥

श्रीहरियश-धम ज धरहि<sup>२</sup> ।

श्रीहरियश नाम उच्चरहि ।

ते सब श्रीहरियश के ॥

धरन सुनहि जे श्रीहरियश ।

मुल धरनत धानी हरियश ।

मन सुमिरन हरियश को ॥

ऐसे रसिक कृपा जो करहि ।

तो हमसे सेवक निस्तरहि<sup>३</sup> ।

कूठनि स पाव सदा ॥

'सेवक' धरण रहे गुण गाइ ।

सतत रसिक सुनहु चितलाइ ।

श्रीहरियश प्रताप-जस ॥१०॥

॥ श्रीहरियश-नाम प्रताप-ब्रह्म प्रकरण ॥ ३ ॥

१ चित्ना २ उभाग करते हैं ३ धारण करते हैं  
सग जाय ।



## ॐ अथ श्रीहरिवश-वाणी प्रकरण ॐ

( राम मारु दम्प दुपई बरु धाठ )

समुभौ श्रीहरिवश सुवानी ।

रसब<sup>१</sup>, मनोहर, सब जग जानी ॥

कोमल, सलित, मधुर पद-श्रनी<sup>२</sup> ।

रसिकनि कोँ सु परम सुख बनी ॥

श्रीहरिवश माम उच्चार ।

मित-विहार-रस कह्यो अपार ॥

श्रीवृन्दावन-भूमि यजानी ।

श्रीहरिवश बहे से जानी ॥

श्रीहरिवश गिरा<sup>३</sup> रस सूधी<sup>४</sup> ।

कछु नहिं बह्यो आपनी सूधी<sup>५</sup> ॥

श्रीहरिवश-कृपा मति पाऊँ ।

सब रसिकनि पाँ गाइ सुनाऊँ ॥१॥

श्रीहरिवश सु श्रीमुख भाखी<sup>६</sup> ।

सो बन भूमि चित्त में राखी ॥

होँ सधु मति नहिं सही प्रमाना<sup>७</sup> ।

आमत श्रीहरिवश सुजाना ॥

नव-पद्म-फल फूल अनता ।

सदा रस श्रुतु शरद-यसता ॥

१ रम-दमयानी, २ पदों की परम्परा ३ बाणी,  
४ रसपूर्ण, ५ बुद्धि ६ बही, ७ माप ।

श्रीवृन्दायन सुन्दरताई ।  
 श्रीहरिवश मित्य प्रति गाई ॥२॥

श्रीवृन्दावन नव-नव कुञ्ज ।  
 श्रीहरिवश प्रेम-रस-पुञ्ज<sup>१</sup> ।

श्रीहरिवश करत नित भेत्ती ।  
 दिन दिन प्रति नव-नव रस भेत्ती<sup>२</sup> ॥

फवहुंक निमित्त तरल<sup>३</sup> हिडोला ।  
 भूलत-पूलत करत कलोला<sup>४</sup> ॥

फवहुंक नव-वत्त सेज रचावहि ।  
 श्रीहरिवश सुरत रति गावहि ॥३॥

सुरत-धत छवि घरनि न जाई ।  
 दिन दिन प्रति हरिवश जु गाई ॥

आज सँभारत नाहिम<sup>५</sup> गोरी ।  
 भङ्ग-भङ्ग छवि कहीं सु धोरी<sup>६</sup> ॥

नैन-धैन भूपन जिहि भाँती ।  
 यह छवि मोप घरनि न जाती ॥

प्रेम प्रीति रस रोति यदाई ।  
 श्री हरिवश-वचन सुगवाई ॥४॥

१ रम के समूह २ पान बग ३ पपम, ४-पान-  
 छोटा, ५ घामा, ६ प्रेम के बग का सम्मान नहीं पा रहा है  
 ७ आ बट्टे वह पाड़ा है ।

वश बजाह विमोहित नारी<sup>१</sup> ।

धोली संग सु नित्य बिहारी ॥

परिरभत घुम्बन रस-केली ।

बिहरत कुँवर कठ भुज मेसी ॥

सुन्दर रास रच्यौ घन माँही ।

यमुना पुलिन कल्पतरु छाँही ॥

रास रग रति धरनि न जाई ।

मित्त-मित्त श्रीहरियश सु गाई ॥५॥

श्री हरियश प्रेम रस गाना ।

रसिक विमोहित परम सुजामा ॥

असनि पर भुज विषे विसोकत ।

तृपित न सुन्दर मुक्त अवलोकत ॥

इन्दु बदन<sup>२</sup> बीधत विवि ओरा<sup>३</sup> ।

घाह<sup>४</sup> सुसोचन तृपित<sup>५</sup> चकोरा ॥

करत पान रस-भक्त सबाई<sup>६</sup> ।

श्री हरियश प्रेम रति<sup>७</sup> गाई ॥६॥

श्रीहरियश सुरोति सुमाउं ।

श्यामा-श्याम एक संग गाऊं ॥

दिन इक कबहुँ न अगतर होई ।

प्राण सु एक बेह है घोई ॥

१ गोपीजन, २ चन्द्र मुण, ३ दोना मोर, ४ मुन्दर  
५ प्यासे ६ मर्दब, ७ प्रेम का प्रेम ।

राधा-सग बिना नहि श्याम ।  
 श्याम बिना नहि राधा-नाम ॥  
 दिन दिन प्रति प्राराधत रहों<sup>१</sup> ।  
 राधा-नाम श्याम तब कहों ॥  
 ललिताविफनि सग सचु पाव ।  
 श्रीहरिवग सुरत रति गावे ॥७॥  
 श्रीहरिवग गिरा-जस गावे २  
 श्रीहरिवग रहत सचु पावे ॥  
 श्रीहरिवग-नाम परसगा<sup>३</sup> ।  
 श्रीहरिवद-गान इक सगा ।  
 मन-धम<sup>४</sup>-यचन कहीं नित टरे<sup>५</sup> ।  
 श्रीहरिवग प्राण-धन मेरे ॥  
 मेयक श्रीहरिवगहि गावै ।  
 श्रीहरिवग-नाम रति पाव ॥८॥  
 वरणा एव

जयति जगदोन्न-जसाँ जगमगत जगत गुद,  
 जगत-वदित सु हरिवग-धानी ।  
 मपुर, कोमल-मुपद, प्रीति-प्राग्भ रम,  
 प्रेम विस्तरत हरिवग-धानी

१ प्राराधनात्मक रहत है २ मुग ३ प्रथम म  
 ४ धम, ५ पुषार कट, ६ द्यामा द्याम का मत ।

रसिक रस-मस्त श्रुति' सुनत पीवत रस  
 रसनि' गावत हरिवंश-श्यानी ।  
 कहत हरिवंश-हरिवंश हरिवंश हित,  
 अपत हरिवंश हरिवंश-श्यानी ॥१॥  
 कही नित केलि रस-खेस वृन्दाविपिन,  
 कुक्ष तें कुक्ष डोलनि' घणानी' ।  
 पट न परसत,' निकसत' धीधनु' सघन,  
 प्रेम-विह्वल सु नहि बेह-मानी' ॥  
 मगन जित तित' चलत, छिन सु उगमग मिलत,  
 पथ' बन वेत अतिहेत' ' जामी ।  
 रसिक हित परम आनन्द अवलोकित तन,  
 सरस विस्तरत हरिवंश-श्यानी ॥२॥  
 वंश रस-भाब' मोहित सकल सु-बरो,  
 आनि' रति मानि कुल छाँड़ि फानी' ।  
 घाटु परिरम, नीवी उरज परसि हँसि,  
 उमँगि रतिपति रमित' रीति जामी ॥  
 वृष पुवतिनु पक्षित, रासमण्डल रचित,  
 गाम गुन नित आम-द-शामी ।

१ जानों के द्वारा    २ जिह्वा व द्वारा    ३ प्रेमना  
 ४ बागान की    ५ सारा करना    ६ निजमना    ७ गमियाँ  
 ८ शरीर का ध्यान    ९ गन यामे    १० इधर-उधर    ११ माग  
 १२ प्रेम    १३ बँसी-नाच    १४ घाबर    १५ मर्यादा    १६ प्रीड़ा ।

तस-चेईं चेईं करत, गतिष नूतन धरत,  
 रास-रस-रचित हरिषश-धानी ॥३॥  
 रास रस रचित धामी जु प्रगटित जगत,  
 सुद्ध<sup>१</sup> अविच्छ<sup>२</sup> परसिद्ध<sup>३</sup> जानी ।  
 श्याम श्यामा प्रगट, प्रगट अक्षर<sup>४</sup> निकट,  
 प्रगट रस अषत, अति मधुर धानी ॥  
 सो जु धानी रसिक नित्य निशि विन रटत,  
 कहत अरु सुनत रस-रीति जानी ।  
 ताहि तजि घोर गाऊं न कचहूँ कछू,  
 प्राण रमि रही हरिषश-धानी ॥३॥  
 भाग अनभाग जानत जु नहि आपनों,  
 कौन-धौं लाभ अरु कौन हानी ।  
 प्रगट निधि छाँटि कत कित<sup>५</sup> क<sup>६</sup> करत,  
 भरम<sup>७</sup> भटकत सुनहि भूल जानी ॥  
 प्रीति विनु रीति दयो जु सागति सफल,  
 जुगत<sup>८</sup> करि होत कत<sup>९</sup> कवित-मानो<sup>१०</sup> ।  
 रसिक जो सद्य<sup>१</sup> चाहत जु रस-रीति फल,  
 सो बही अरु सुनो हरिषश-धानी ॥५॥

१ सुद्ध प्रेमाभक्ति से पूर्ण २ विरोध हीन ३ प्रसिद्ध  
 ४ पदों के लक्षण ५ पुकार ६ भ्रम ७ बनावट ८ कर्मों  
 ९ कविता १० अभिमानो १० शीघ्र ।

यहै नित-केलि, येई सु नाइक निपुम,  
 यहै बन भूमि नित नित बखानी ।  
 घटत रचमा करत, राग रागिनि धरत,  
 ताम-बधान सब ठानि<sup>१</sup> आनी ॥  
 ज्यो मूबे<sup>२</sup> नहि मिलत टकसार तें बाहिरी,  
 लास में गर-मुहरी<sup>३</sup> जु जानी ।  
 यो जु रस-रीति धरमत न ठाई<sup>४</sup> मिलत,  
 जो न उच्चरत हरियंश-आनी ॥६॥  
 रसिक बिनु कहे सब ही जु मानत धुरी,  
 रसिकई<sup>५</sup> कही कैसे जु आनी ।  
 आपनी-आपनी ठौर जेई तहां,  
 आपनी बुद्धि के होत मानी ॥  
 निपट फरि<sup>६</sup> रसिक जो होहु तेंसी कही,  
 अब जु यह सुनो मेरी कहानी ।  
 जोर तुम रसिक रस रीति के आडिले<sup>७</sup>,  
 तौर मम बेहु हरियंश-मानो । ७॥  
 वेद बिद्या पढ़त कम घमनि करत,  
 जसवि<sup>८</sup> तन-कसप<sup>९</sup> की अयधि आनी ।

१ जबदस्ती, २ मुद्रा, ३ ग्राह्य मुद्रा, ४ घमन स्थान  
 पर ५ रसिपण ६ वास्तविकता व साथ, ७ इच्छा,  
 ८ बकवाद करने, ९ शरीर के मांस की ।

घाट-गति<sup>१</sup> द्वाँड नसार भटकत भ्रमत,  
 प्राप्त की पाति<sup>२</sup> नहि तोरि जानी ॥  
 सक्त स्वारथ करत रहत जमत-मरत,  
 दुख अथ सुख के होत मानी ।  
 द्वाँटि अजार कसे न निवय घरत,  
 एक दिन रमत हरियश-धानी ॥८॥  
 वृथा बलगन<sup>३</sup> करत द्योत<sup>४</sup> लोयत सकल,  
 सोयतन<sup>५</sup> राति नहि जात जानी ।  
 ऐसेई भांति समुझ्यो म कबहूँ कट्टू,  
 कौन सुख दुख को लाभ हानी ॥  
 तय सुबल हरियग-गुन-नाम रमना रटत,  
 और बहु बचन अति दुख-धानी ।  
 हामि हरियग के नाम अन्तर परे,  
 लाभ हरियश उचरत धानी ॥९॥  
 माम-धानी निबट श्याम श्यामा प्रगट,  
 रहत निनिदिन परम प्रीति जानी ।  
 नाम धानी मुनत श्याम-श्यामा सुयस<sup>६</sup>,  
 रसद माधुष अति प्रेम-धानी ॥

१ मुन्दर गति २ यथन, ३ वाया ४ नि  
 ५ सोये-मान ६ गुनम ।



नाम-धानी जहाँ इयाम-इयामा तहाँ,  
 सुमत्त गावत्त मो मन जु मानी ।  
 वसित<sup>१</sup> शुभनाम बलि विशद-कीरति<sup>२</sup> जगत,  
 हौं छु बसि जाठे हरिवश-धानी ॥१०॥

॥ छप्पय ॥

बलि-बसि श्रीहरिवश नाम बलि-बसित विमल जस ।  
 बलि-बसि श्रीहरिवश कर्म-प्रत कृत<sup>३</sup> सु नाम-बस ॥  
 बलि-बसि श्रीहरिवश धरन धर्मनि<sup>४</sup> गति जानत ।  
 बलि-बसि श्रीहरिवश नाम कलि प्रगट प्रमानत<sup>५</sup> ॥  
 हरिवश नाम सु प्रताप बसि-बसित जगत कीरति विशद ।  
 हरिवश विमल-धानी सु बलि मृदु कमनीय<sup>६</sup> सुमधुर पद ।१

ॐ इति श्रीहित वाणी प्रकरण ॐ

ॐ अथ श्रीहित इष्टाराधन प्रकरण ॐ



॥ छप्प गाय ॥

प्रथम प्रणम्य<sup>७</sup> सुरम्य<sup>८</sup> मति मन बुधि चित्त प्रसंग ।  
 धरण शरण सेवक सदा सु ज-ज श्रीहरिवश ॥

१ बसिहागे २ महान कीर्ति, ३ गिये, ४ वरुणधर्म  
 धर्म ५ स्थापित किया ६ गुन्दर ७ प्रणाम करने ८ गुन्दरी

श्रीहरिवश विपुल गुण मिष्ट<sup>१</sup> ।

श्रीहरिवश उपासक-दृष्ट<sup>२</sup> ।

श्रीहरिवश कृपा मति पाऊं ।

श्रीहरिवश विमल गुण गाऊं ॥

गाऊं हरिवश नाम-जस निमल श्रीहरिवश रमित प्रान ।

कारज हरिवश प्रताप सु उद्धित<sup>३</sup> फारन श्रीहरिवश मन<sup>४</sup> ॥

विद्या हरिवश मत्र घसुरसर<sup>५</sup> जपत सिद्धि, भव-उद्धरण<sup>६</sup> ।

जं-ज हरिवश जगत-मगल-पर श्रीहरिवश घरण शरण ॥ १

हरिरिति अक्षर बोज ऋषि यशो शक्ति सु अश ।

नल सिंग सुन्दर ध्यान धरि ज ज श्रीहरिवश ॥

श्रीहरिवश सु सुन्दर ध्यान ।

श्रीहरिवश विगद विज्ञान<sup>७</sup> ॥

श्रीहरिवश नाम गुण धूप<sup>८</sup> ।

श्रीहरिवश प्रेम रस रूप ॥

रसमय हरिवश परम-परमाक्षर<sup>९</sup> श्रीहरिवश कृपा-सदन ।

आत्मा हरिवश प्रगट परमानन्द श्रीहरिवश प्रमाणमन<sup>१०</sup> ।

जीवन हरिवश विपुल सुख-सम्पत्ति

श्रीहरिवश बलित धरण<sup>११</sup> ।

१ मधुर २ ध्यानप्रभु ही आगपा है और यही आगध है ३ प्रताप ४ बह गये है ५ गार धार बाता ६ मन्त्र ग उद्धार ७ धनुष-अक्षर ८ स्वस्व, ९ प्रमाण म व १० मन के निय प्रमाण स्वस्व है ११ बग धरण ।

जं-जं हरिवश जगत-मङ्गल पर,  
श्रीहरिवश धरण शरण ॥२॥

शरण निरापक<sup>१</sup> पद रमित<sup>२</sup> सकल अशुभ-शुभ नश ।  
वेत सहज मित्रस भगति जं-जं श्रीहरिवश ॥

श्रीहरिवश मुवित मन सोमं ।

श्रीहरिवश बघन धर शोभ<sup>३</sup> ॥

श्रीहरिवश काम-कृत<sup>४</sup> कार<sup>५</sup> ।

श्रीहरिवश त्रिशुद्ध<sup>६</sup> विचारं ॥

पूजा हरिवश नाम परमारथ,

श्रीहरिवश विधेक पर ।

धीरज हरिवश विरब<sup>७</sup> बल-धीरज<sup>८</sup>,

श्रीहरिवश अभद्र<sup>९</sup> हर ॥

तुस्मा हरिवश सुजस रस-सम्पट,

श्रीहरिवश कम धरण ।

जं-जं हरिवश जगत-भगत-पर,

श्रीहरिवश धरण शरण ॥३॥

श्रीहरिवश सुगोत-कुत्त, देव-जाति हरिवश ।

श्रीहरिवश स्वरूप हित, रिद्धि सिद्धि हरिवश ॥

१ इन वाक्य २ धरणों में समाप्त करने वाले ( मन  
संगत वाक्य ) ३ गोमा ४ धारी से लिये हुए, ५ कम  
६ मन-वाणी-धर्म के द्वारा शुद्ध ७ यग, ८ बसबोप ९ अशुभ

श्रीहरिवश विवित विधि-वेद<sup>१</sup> ।

श्रीहरिवश सु तत्त्व अभेव<sup>२</sup> ॥

श्रीहरिवश प्रकाशित जोग<sup>३</sup> ।

श्रीहरिवश सुकृत सुख भोग ॥

प्रज्ञा<sup>४</sup> हरिवश प्रतीति<sup>५</sup> प्रमानत<sup>६</sup>,

प्रीतम<sup>७</sup> श्रीहरिवश प्रिय ।

गाथा<sup>८</sup> हरिवश गीत<sup>९</sup> गुण गोचर<sup>१०</sup>,

गुप्त<sup>११</sup> गुप्त<sup>१२</sup> हरिवश गिय<sup>१३</sup> ॥

सेवक हरिवश-सार सचित<sup>१४</sup> सख,

श्रीहरिवश धम धरन ।

जै-ज (श्री) हरिवंश जगत जगत पर,

श्रीहरिवश चरण शरणं ॥ ३ ॥

एवम्

जै-ज श्रीहरिवशचन्द्र द्विजवर<sup>१५</sup> फुल-मण्डन<sup>१६</sup> ।

जै-ज श्रीहरिवशाषट्ठ कलि-सम भय-सण्डन<sup>१७</sup> ॥

ज-ज श्रीहरिवशाचन्द्र अफसक प्रकाशित ।

जै-ज श्रीहरिवशाचन्द्र सख जग धामासित<sup>१८</sup> ॥

१ ब्र की विधि २ अद्वय ब्रह्म-तत्त्व ३ अष्टांग योग  
 ४ गान्धर्व विवेचिनी बुद्धि ५ विश्राम, ६ प्रमाणित करना,  
 ७ परमाद्वय ८ पत्रिका ९ गान १० प्रत्यक्ष ११ शुद्ध  
 १२ वगन करनी है १३ बाणी १४ एवमित्त करना ।  
 १५ श्रीधामामिधारी १६ घोषा १७ मगार के अथवार का  
 भाग करन बाण, १८ प्रकाशित ।

(श्री) हरिवशघ्न भ्रमृत बरधि,

सकल-भक्तु<sup>१</sup> तापनि<sup>२</sup> हरण ।

सेवक समीप सतत रहै सु,

श्रीहरिवश चरण शरण ॥१॥

इति श्रीहित इष्टाराधन प्रकरण ॥३॥

ॐ अथ श्रीहित-धर्मिन-कृत प्रकरण ॐ

छार तोटक

पहिले हरिवश सुनाम कहौ ।

हरिवश-सुधमिन सग सहौ<sup>१</sup> ॥

हरिवश सु नाम सदा तिनकें ।

सुख-सम्पति वम्पति सु जिनक ॥१॥

हरिवश सुनाम कहौ नित के ।

मित्त हो कहौ हरिय सुधमिन के<sup>२</sup> ।

हरिवश उपासन हँ तिनकें ।

सुख-सम्पति वम्पति सु जिनके<sup>३</sup> ॥२॥

हरिवश गिरा रस-रीति कहै ।

सुकृती-जन<sup>४</sup> सङ्गति मिरय रहै ॥

१ जोय मानक, २ दु गों को ३ प्रात परो ४ नाम क माय मिला हुआ न्यधर्मियों का हरिय कहता है ५ पुष्य पीस सोग ।

कछु धम विरुद्ध नही तिन कै ।

सुख-सम्पति दम्पति जू जिन कै ॥३॥

हरिवश प्रशसत नित्य रहैं ।

रस रीति-विर्वायित<sup>१</sup> कृत्य<sup>२</sup> कहैं ॥

जु कछु बुल-कम नहों तिन कै ।

सुख-सम्पति दम्पति जू जिन क ॥४॥

हरियश-सुनाम जु नित्य रट ।

द्विन-जाम समान न नकु घटें ।

विधि और निषेध नहों तिन क ।

सुख-सम्पति दम्पति जू जिन कै ॥५॥

हरिवश-सुधम जु नित्य कर ।

हरिवग कही सु नहों बिसर ॥

हरिवग सवा निधि<sup>३</sup> है तिनक ।

सुख-सम्पति दम्पति जू जिन कै ॥६॥

हरियग प्रतापहि जानत है ।

हरिवग प्रयोघ<sup>४</sup> प्रमानत है ।

हरियग मु सवसु है तिन क ।

सुख-सम्पति दम्पति जू जिन कै ॥७॥

हरियग विचार पने जु रहैं ।

हरियग-धरम्म पुरा<sup>५</sup> निचहै ॥

हरिवश निघाहक' है तिनकें ।

सुख-सम्पति सम्पति कू जिन कें ॥८॥

हरिवश-रसायन' पीषत है ।

हरिवश कहे सुख जीवत है ॥

हरिवश पतिव्रत है तिन क ।

सुख-सम्पति सम्पति कू जिन कें ॥९॥

हरिवश गिरा रस रोति मन ।

हरिवश कहे, हरिवश सुमें ॥

हरिवश हृदय-व्रत है तिन कें ।

सुख-सम्पति सम्पति कू जिन क ॥१०॥

हरिवश शृपा हरिवश कहे ।

हरिवश कहे, हरिवश सहें ॥

हरिवश सुसाभ सदा तिन क ।

सुख-सम्पति सम्पति कू जिनक ॥११॥

हरिवश परायन० प्रेम भरे ।

हरिवश सु मन्त्र जपे सुधरे ॥

हरिवश सु ध्यान सदा तिन क ।

सुख-सम्पति सम्पति कू जिन क ॥१२॥

१ निर्बाह करमे बात २ प्रमृत ।

•सेवक वाणी के टीकाकार श्रीहरिसात व्यास ने 'परायन' के स्थान में 'रसायन' पाठ रखा है ।

नित धोहरिबश सु नाम कहै ।

नित राधिका-श्याम प्रसन्न रहै ॥

नित साधन और नहीं तिन क ।

सुख-सम्पति बम्पति कू जिन कै ॥१४॥

जब राधिका-श्याम प्रसन्न भये ।

तब नित्य समीप सु खेंधि लये ॥

हरियश समीप सदा तिन कै ।

सुख-सम्पति बम्पति कू जिन कै ॥१४॥

दण्ड

नित नित श्रीहरियश-नाम छिन छिन जु रटत नर ।

नित नित रटत प्रसन्न जहाँ बम्पति किशोर-धर ॥

जहाँ हरि तहाँ हरियश, जहाँ हरियग तहाँ हरि ।

एक शब्द हरियश-नाम राएयो समीप करि ॥

हरियश नाम सु प्रसन्न हरि, हरि प्रसन्न हरियश रति ।

हरियग-धरण-सेवक बिते सुनहु रसिक रस रोति गति १

इति श्रीहित-परिनि नृन प्रकरण ॥६॥





## ॐ अथ श्रीहित रस-रीति प्रकरण ॐ

[ धन रक्षा ]

ध्यासनन्दम अगत प्राधार ।

जगमगत अगजस, सब जग घवनीय, जगभय विह्वलन<sup>१</sup> ।

जगशोभा, अगसम्पदा, जगजीवन, सबजग-मण्डन ॥

अग-मगत, जग-उद्धरण, जगनिधि<sup>२</sup>, जगत-प्रशश ।

धरण शरण सेवक सदा सु अ-अ श्रीहरिवश ॥१॥

जपति यमुना विमल-वर-धारि ।

दीप्तल तरल तरगिनी<sup>३</sup>, रत्न-यद्ध<sup>४</sup> विधि<sup>५</sup> सट विराजस ।प्रफुलित विविधि सरोजगन चक्रवावि<sup>६</sup> कुल हस राजत ॥

कूल विशव, यनद्रुम सघन, सता भयन अतिभ्य ।

नित्य-केलि हरिवश हित सु ग्रहाधिकनि अगम्य<sup>७</sup> ॥२॥

सुघर सुधर सुमति सवश ।

सतत सहज सदा सवन सघनपृष्ठ सुप्रपृष्ठ बरसत ।

सीरम सरस सुमन घम<sup>८</sup> सजित सैन सचु<sup>९</sup> रग हरसत ॥

केलि पिशव भ्रानन्द रमर येति अदृत नित नाम ।

ठेलि<sup>१०</sup> निगम-मग<sup>११</sup> पग सुभग लेलि कुंवर वर याम<sup>१२</sup> ॥३॥

१ नष्ट करने धान, २ जग के गर्भम्ब ३ तरंग वाली

४ रत्नत्रयिण, ५ दाता ६ चक्रवा घाति ७ अती परीचा न

जा मयं ८ भयन सुमना ९ मुग १० दूर हटा कर ११ बे

पाग १२ श्रीदयामा-न्याम ।

रसिक रमनी रसद रस-रासि ।

रस-सीर्षा, रस सागरो, रसनिवृद्ध रसपुद्ध वरसत ।  
 रसनिधि, सुविधि रसज्ञ, रस-रेख रीति-रस, प्रीति हरसत ॥  
 रस भूरति, सूरति सरस, रस-चिलसनि रस रग ।  
 रस प्रधाह सरिता सरस, रति-रस सहृदि तरग ॥४॥

श्यामसुन्दर उरसि<sup>१</sup> मनमाल ।

उरगभोग<sup>२</sup> भुनवण्ड घर, फम्बुकण्ठ<sup>३</sup> मनि-गन बिराजत ।  
 पृश्चितकच<sup>४</sup> मुख सामरस<sup>५</sup> मधु-सम्पट जनु मधुप राजत ॥  
 शोश मुकुट, पृण्डल श्रवन, मुरली अघर त्रिभग ।  
 फनक-रूपित<sup>६</sup> पट शोभि अति, जनु घन दामिनि सग ॥५॥

सुभग-सुन्दरो, सहजसिद्धार ।

सहजगोभा सर्वांग प्रति, सहजरूप वृषभानु नविनी ।  
 सहजानन्द बह्विनी<sup>१</sup>, सहज विपिन घरउदित घविनी ॥  
 सहज बेलि नित नित नवस, सहज रङ्ग सुल-चैन ।  
 सहज मापुरी अग प्रति सु मोपै बहस वन न ॥६॥

विपिन निसत रसिक रस रासि ।

वपति अति आनन्द बस, प्रेममत्त निदर्शक स्नेहत ।

१ रग व शाला २ माया ३ हृत्प पर ४ सर्प वा अग  
 ५ पाग व ममान त्रिवनी युक्त कठ ६ पु मरुने पाप ७ बयन  
 ८ पाया ९ मयमाया ।

घघल कुण्डल कर चरण नन लोल रतिरग वीडत<sup>१</sup> ।  
 भटकत पट, चुटकिन घटक, सटकत लट, मूडु हास  
 पटकत पव, उघटत शब्द, मटकत भूकुटि विलास ॥७॥  
 नवल नागरि नवल पुषराज ।

नव-नव घन घन क्रीडत, मयनिकुञ्ज बिलसत सथसु ।  
 मय-मय रति नित नित घड़त, नयो नेह नवरग नयो रसु  
 मयविलास कल हास नव, मपुर सरत मूडु येन ।  
 मयकिशोर हरिर्वश हित सु नवल-नवल सुख घन ॥८॥

॥ छन्द ॥

नवल-नवल सुख घन ऐन घापने घापु यत ।  
 निगम सोष मर्याद भनि<sup>२</sup> क्रीडत<sup>३</sup> रङ्ग रत ॥  
 सुरत प्रसङ्ग निशङ्क करत जोई-ओई भावत मन ।  
 ललित भङ्ग चलि भगि भाइ<sup>४</sup> ललित सु फोकान<sup>५</sup> ॥  
 भवमुत्त विहार हरियश हित ,

निरति वासि सेवक जियत ।

विस्तरत, सुनत, गाघत रसिक

सु नित नित सीसा रत पियत ॥९॥

१ ललित होने है २ ताड़ कर, ३ वीडा पगते है  
 ४ भाय भंगी ५ नाम रस पाश्रों क समूह ।

इति श्रीहित म् गीति प्रारण ॥७॥

ॐ अथ श्रीहित अनन्य टेक प्रकरण ॐ

॥ सवया ॥

कम धम कोठ करहु वेद-विधि,  
कोठ बहुविधि वेवतनि उपासी ।  
कोठ तीरय तप ज्ञान ध्यान व्रत,  
अर कोठ निर्गुण ब्रह्म उपासी ।  
कोठ यम-नेम परत अपनी रुचि,  
कोठ अवतार-कवम्य' उपासी ।  
मन-क्रम-यचन त्रिगुढ सकल मत,  
हम श्रीहितहरिवश-उपासी ॥१॥  
जाति पाति कुल-कम धम व्रत,  
ससृति-हेतु' अविद्या नासी ।  
सेवक-रोति प्रतीति' प्रीति हित,  
पिधि निषेध शृङ्खला' विनासी ॥  
अथ जोई बहो कर हम सोई,  
प्रायसु'लिये धन निज धासी ।  
मन-क्रम-यचन त्रिगुढ सकल मत,  
हम श्रीहितहरिवश उपासी ॥२॥  
हो हरिवश को नाम सुनायं,  
सम-मन-प्राण सामु बलिहारी ।

ममू' २ जग्य मरण का कारण ३ निष्ठ ४ यपन  
गामा ।

- जो हरिवश-उपासक सेबं,  
सवा सेठें ताके धरण विचारी ॥
- जो हरिवश-गिरा जस गावें,  
सवसु बँहें तासु पर धारी ।
- जो हरिवश को धर्म सिखावें,  
सोई तौ मेरे प्रभु तैं प्रभु भारी ॥३॥  
( मालती छन्द )
- श्रीहरिवश सुनाव विमोही,  
सुनि धुनि मित्य तहाँ मन वैहों ।
- श्रीहरिवश सुनत धसों सग,  
हों तिन सग नित्यप्रति जहाँ ॥
- श्रीहरिवश धिसास रास-रस,  
श्रीहरिवश सग अनुभहों<sup>१</sup> ।
- जो हरिनाम जगत्रि क्षिरोमणि,  
'वश' विना कबहूँ नहिं लहों ॥४॥  
( मरिच छन्द )
- प्रेमी अनन्य भजत न होइ,  
जो अन्तरभामी<sup>२</sup> भनै मम में ॥
- जो भक्ति देख्यो यशोदा की मन्दन,  
विषय बिपारि सव तन में ॥
- श्रीहरिवश सु नाब विमोहीं ते,  
शुद्ध समीप मिलीं दिन में ।

१ मोहित हुई, २ अनुभव करूँगा ३ अग्रगण्य स्वरूप,

ॐ अष्टम प्रकरण ॐ

अब यामें मिसौनी' मिलें न कछु,  
जब खेलत रास सवा घन में ॥५॥

( मातृगी धन्द )  
जो बहु मान करे कोठ मेरी,  
जो अपमान कर कोठ कहूँ,  
किये यहु मामत नाहि बड़ाई ।  
किये अपमान नहीं लघुताई ॥

श्रीहरियश गिरा रस सागर,  
मोहि मगध सब निधि पाई ।  
जो हरियश तजो, मनो प्रीरहि,  
तो मोहि श्रीहरियश-बुहाई ॥६॥

( पदावली )  
बही बन-केलि निवृद्ध निवृद्धनि,  
नवदम नूतन सेज रचाई ।  
नाय 'धिरमि धिरमि' बही,

सब सो रति तंसीयो' बसे नुसाई ॥  
'सत्यर उठे महामपु पीयत',  
माधुरी यानी मेरे मन भाई ।  
जो हरियश तजो, मनो प्रीरहि,  
तो मोहि श्रीहरियश-बुहाई ॥७॥

१ मिमाष्ट

२ जग प्रकार को ।

३ बिगी प्रकार

४ साधन

( मासती छन्द )

'भुज प्रसनि घीने विसोकि रहे,  
 मुख चब उभ' मधु पान' कराई ।'  
 प्रापु' विसोकि' हृदय कियो मान,  
 घिबुक्क' सुघाठ प्रसोइ' मनाई ।  
 श्रीहरिव श घिना यह हेत', को  
 घाने कहा, को कहे समुझाई ।  
 जो हरिव श तजो, भजो श्रीरहि,  
 तो मोहि श्रीहरिव श-बुहाई ॥८॥  
 श्रीहरिव श सुनाब, सुरोति,  
 सुगान मिले वम माधुरी गाई ।  
 श्रीहरिव श यचप्र रचप्र',  
 सु नित्य किशोर किशोरी सदाई' ॥  
 श्रीहरिव श गिरा रस-रोति,  
 सु चित्त प्रतीति न घान' सुहाई ।  
 जो हरिव श तजो, भजो श्रीरहि,  
 तो मोहि श्रीहरिव श बुहाई ॥९॥  
 श्रीहरिव श को नाम सु सयसु,  
 जानि सु राख्यो मे चित्त समाई ।

१ दोनों २ मधु-पान, ३ स्वय को, ४ देतकर,  
 ५ छोटी, ६ महमाकर, ७ प्रेम, ८ यजन की रचना, ९ माइ  
 (प्यार) बिया, १ घन्य ।

श्रीहरिवंश के नाम प्रताप की लाभ-

सह्यो सु कह्यो नहि जाई ॥

श्रीहरिवंश कृपा तं त्रिगुणक,

साँची यहै जु मेरे मन भाई ।

जो हरिवंश तजौ, भजौ श्रीरहि,

सो मोहि श्रीहरिवंश-बुहाई ॥१०॥

देखे जु मैं अवतार सय भजि,

तहाँ-तहाँ मन ससौ न जाई ।

गोकुलनाथ महा व्रज-व्रभध,

सीला अनेक न चिस लटाई <sup>१</sup> ।

एकहि रीति प्रतीति धैर्यो मन,

मोहीं<sup>२</sup> सय हरिवंश बजाई ॥

जो हरिवंश तजौ, भजौ श्रीरहि,

सो मोहि श्रीहरिवंश-बुहाई ॥११॥

नाम अरु<sup>३</sup> हरं अघपुञ्ज<sup>४</sup>,

जगत् कर हरि-नाम बड़ाई ।

सो हरिवंश समेत संपूरण,

प्रेमी अनयनि को सुलदाई ।

श्रीहरिवंश पहल मुनत,

दिन दिन पास युषा नहि जाई ।

जो हरिवंश तजौ, भजौ श्रीरहि,

सो मोहि श्रीहरिवंश-बुहाई ॥१२॥

१ अघो महा मगा, २ मार्गि ह, ३ घाया ४ पापमृग ।



॥ छप्पय ॥

श्रीहरिवंश सुप्राण, सु मन हरिवल गनिज्ज<sup>१</sup> ।  
 श्रीहरिव श सुधिस, मिस<sup>२</sup> हरिव श भनिज्ज<sup>३</sup> ॥  
 श्रीहरिव श सु बुद्धि, वरन<sup>४</sup> हरिव श नाग-अस ।  
 श्रीहरिव श प्रकाश वचन, हरिव श गिरा रस ॥  
 हरिव श नाम विसर म छिन, श्रीहरिवश सहाइ भल<sup>५</sup> ।  
 हरिव श चरण सेवक सदा, सु शपथ करी हरिवश-बल ॥

॥ इति श्रीहित मनस्य टेक प्रकरण ॥

### ॐ अथ अकृपा-कृपा प्रकरण ॐ

( अकृपा-मोटा )

सय जग देख्यो चाहि<sup>१</sup> पाहि<sup>२</sup> कहीं हरि भक्ति विनु ॥  
 प्रीति कहूँ नहि पाहि<sup>३</sup>, श्रीहरिव श कृपा विना ॥१॥  
 गुप्त प्रीति को भंग, संग प्रचुर<sup>४</sup> अति देखियत ।  
 नाहिन उपजत रग, श्रीहरिव श कृपा विना ॥२॥  
 मुक्त वरनस रस रीति, प्रीति चित नहि भावई ।  
 चाहत सब जग कीर्ति, श्रीहरिव दा कृपा विना ॥३॥  
 गावत गीत रसाल, भाल तिसक शोभित घना<sup>५</sup> ।  
 विनु प्रीतिहि घेहाल<sup>६</sup>, श्रीहरिवश कृपा विना ॥४॥

१ गिनना चाहिय २ मित्र, ३ कहना पाहिये, ४ वरान  
 ५ भली प्रकार सहायक ६ ध्यान पूर्वक, ७ विग्रह ८ है  
 ९ अमित, १० मोटा ११ विकल ।

नाचत प्रतिहि रसाल<sup>१</sup>, सास न शोभित प्रीति विनु ।  
 जन धीये<sup>२</sup> अजाल, श्रीहरिवश-कृपा विना ॥५॥  
 मानत अपनी भाग, राग<sup>३</sup> करत अनुराग विनु ।  
 खोखत सकल अभाग, श्रीहरिवश-कृपा विना ॥६॥  
 पढ़त जु वेद पुरान, दान न शोभित प्रीति विनु ।  
 धीये प्रति अनिमान, श्रीहरिवश कृपा विना ॥७॥  
 वरदान भक्त अनूप, रूप न शोभित प्रीति विनु ।  
 नरम-भटवत्<sup>४</sup> भूप श्रीहरिवश-कृपा विना ॥८॥  
 सुवर परम प्रवीन, सीन<sup>५</sup> न शोभित प्रीति विनु ।  
 ते सब बीसत बीन<sup>६</sup>, श्रीहरिवश कृपा विना ॥९॥  
 गुन-मानो ससार, घोर सकल गुन प्रीति विनु ।  
 अहुन धरत शिर भार, श्रीहरिवश-कृपा विना ॥१०॥

॥ कृपा क मोर्य ॥

मुग यरनत हरिवंग, वित्त नाम-हरियंग रति  
 मन सुमिरत हरिवंग, यह जु कृपा हरिवंग की ॥१॥  
 गव जीयनि सों प्रीति, रीति निघाहत आपनी  
 अथन-अथन परतोति, यह जु कृपा हरियंग की ॥२॥  
 दागु मित्र सम जानि, मानि मान अपमान सम  
 दुग-मुग साभ न हानि, यह जु कृपा हरिवंग की ॥३॥

नित्त इक घमिन सग, रंग<sup>१</sup> घड़त नित्त नित्त सरस ।  
 नित्त नित्त प्रेम अभाग, यह जु कृपा हरिवंश की ॥४॥  
 निरक्षत नित्य विहार, पुलकित तन रोमावली ।  
 आनंद नैन सुदार<sup>२</sup>, यह जु कृपा हरिवंश की ॥५॥  
 छिन छिन खन करत, छिन गावत आनख भर ।  
 छिन छिन हहर हसंत, यह जु कृपा हरिवंश की ॥६॥  
 छिन-छिन बिहरत सग, छिन छिन निरक्षत प्रेम भरि ।  
 छिन अस कहत अभाग<sup>३</sup>, यह जु कृपा हरिवंश की ॥७॥  
 निरक्षत नित्य किशोर, नित्य-नित्य नख-नख सुरत<sup>४</sup> ।  
 नित्त निरक्षत छवि भोर<sup>५</sup>, यह जु कृपा हरिवंश की ॥८॥  
 तुपित<sup>६</sup> न मामत नम, कुक्षरंध<sup>७</sup> भव नोकि तन ।  
 यह सुख कहत वम न, यह जु कृपा हरिवंश की ॥९॥  
 कहा कहीं घड़ भाग, नित्त-नित्त रति हरिवंश हित ।  
 नित्त घड़ त अनुराग, यह जु कृपा हरिवंश की ॥१०॥

क्षण

नित्त घड़त अनुराग भाग अपनौ करि मामत ।  
 नित्य नित्य नखकेलि निरपि नननि सखु मामत ॥  
 नित्त नित्त श्रीहरिवंश-नाम नख-नख रति मानत ।  
 नित्त नित्त श्रीहरिवंश कहत सोइ-सोइ गिर मानत<sup>८</sup> ॥

१ प्रेम का रंग २ प्रवाहित, ३ घटहोम ४ प्रेम-श्रीड़ा  
 ५ प्राण-शासीन, ६ तृप्ति ७ पृष्ठों के छिद्र, ८ शिरोपाय  
 करता है ।

प्राप्तुनो भाग प्राप्तुन प्रगट कहत जु श्रीहरिवश यत्न ।  
हरिवश भरोसे भये मिठर सु नित गजत हरिवश यत्न ॥११

इति श्रीहृषा-महृषा प्रकरण ॥६॥

## ॐ अथ श्रीहित भक्त-भजन प्रकरण ॐ

( कृष्णविषा )

श्रीहरिवश सु धम दृढ़ अरु समुभत निजु रीति ।

तिनकी हौं सेवक सदा सु मन-क्रम-वचन प्रतीति ॥

मन-क्रम-वचन प्रतीति प्रीति दिन<sup>१</sup> चरण पत्तारों<sup>२</sup> ।

नित प्रति जूठन पाठें बरन भेदाहि<sup>३</sup> न बिचारों ॥

तिनकी सगति रहत जाति-फुल-भव मय नसहि ।

मतत सेवक सदा भजत जे श्रीहरिवशहि ॥१॥

सब अनन्य साँचे सुविधि सबकी हौं निजु दास ।

सुमिरन नाम पवित्र अति दरस परम अघ नास<sup>४</sup> ॥

दरन परम अघ-नास बास निजु सग करों दिन ।

तिनमुख हरिजस सुनत अघन मानों न सृपति दिन ॥

पति अमद बरनत सहम फति फामादिब दुद तब ।

सेवक गरण मदा रहें सुविधि सचि अनन्य सब ॥२॥

राधावल्लभ भजत<sup>५</sup> भजि<sup>६</sup> भसी-भती सब हाइ ।

रसिब अनन्य सजासि<sup>७</sup> भजि भसी-भसी सब होइ ॥

१ गन्ध २ घोड़े ३ जानि भे ४ पाव वा माग

५ राधावल्लभ के भक्तों वा ६ प्रद्वन कर. ७. सुमान मन जान १

भली भली सब होइ जयहि हरिवश चरण रति ।  
 भली भली सब होय रचित<sup>१</sup> रस रोति सदा मति ।  
 भली भली सब होइ भक्ति गुन रोति अगाथा ।  
 भली भली सब होइ भजत भजि श्रीहरि राधा ॥३॥  
 राधावल्लभ भजत भजि भली-भली सब होइ ।  
 अशुभ अनमति<sup>२</sup> सग जन विमुक्त सजो सब होइ ॥  
 विमुक्त सजो सब कोइ भूठ घोसत सधु मानत ।  
 दोष करत निरसक रक करि सतन जानत ॥  
 अभिमानी गविष्ठ सोभ सब-मत्त अगाथा ।  
 दुष्ट परिहरो<sup>३</sup> हरि भजत भजि श्रीहरि राधा ॥४॥  
 राधावल्लभ भजत भजि भली भली सब होइ ।  
 जिसे विनायक<sup>४</sup> शुभ अशुभ विघ्न कर नहि कोइ ॥  
 विघ्न कर नहि कोइ इरं कलि-काल कष्ट भय ।  
 हर सकल संताप हरति हरिनाम जयत जय ॥  
 शोचन्दावम निरप्र बेसि बस करत अगाथा ॥  
 हितहरिवश-किशोर भजत भजि श्रीहरि राधा ॥५॥  
 राधावल्लभ-भजत भजि भली भली सब होइ ।  
 त्रिविधि साप नासहि सबस सब सुख-सम्पति होइ ॥  
 सब सुख-सम्पति होइ, होइ हरिवश चरण रति ।  
 होइ विषय विष नाश, होइ शोचन्दावम मत्त गति<sup>५</sup> ॥

१ रग गई २ बुरे, ३ त्याग दो ४ विघ्नराज,

५ मन का गति शोचन्दावन क अधीन हो जाती है ।

होइ सुदृढ़ सतसग होइ रस-रोति अगाथा ।  
होइ सुजस जग प्रगट होइ पद प्रीति मु राधा ॥६॥  
राधावल्लभ भजत भजि भली भली सय होइ ।  
भीर' मिट भट-जनन' की नय भजन' हरि सोइ ॥  
भय भजन हरि सोइ भरम भूल्यो भटपत पत ।  
भगवत भक्ति विचारि येद भागवत प्रीति रति ॥  
भक्त-चरण धरि भाव तरत भवसिंधु अगाथा ।  
हितहरियश प्रदात भजत भजि श्रीहरि राधा ॥७॥  
राधावल्लभ भगत भजि भली-भली सब होइ ।  
अन्य देय-सेवी सफल चलत पुजीसी' सोइ' ॥  
चलत पुंजीसी सोइ रोइ-भक्ति' छोत' गँवावत ।  
सोइ छपत' सब रम जोइ' कपिसम' जु नचावत ॥  
भोइ' विषम विद विषय' कोइ सतगुरु नहि साधा' ॥  
धोइ सकल कलि-कसुप' दोइ भजि श्रीहरि-राधा ॥८॥  
राधावल्लभसास विनु जीवन-जनम अफत्य' ।  
बाधा सब फुल कम-भूत' तुच्छ न साग हत्य ॥  
तुच्छ न साग हत्य' सत्य' समरय' १ विषी' सय ।  
माय धुनत हरिविमुक्त सग यमपथ चलत जय ॥

१ पट्ट २ यमदूत ३ भय वा नाग करन घान  
४ गवस्य-गर्भनि ५ गँवावत ६ ग रात्रर ७ दिन ८ अज्ञान  
करना ९ भली १० धर के गमान ११ मगन हाकर  
१२ विषय क्यो विद १३ प्राप्त हुआ १४ पाप १५ कहन  
योग्य नहीं १६ क्रिया रम, १७ हाप १८ माय  
१९ पति-पत्नी २० हुआ ।

गाथ विमल' गुन गान कर्य' जस भवन अगाथा ।  
 नाथ अनाथनि हित समय मोहन श्रीराधा ॥६॥  
 कमठ' कठिन' ससल्य' नित सोधत शीश पुनत' ।  
 श्रीहरिवश जु उढरी सोह रस-रीति सुनत ॥  
 सोइ रस-रीति सुनत अन्त अमसहन करत सब ।  
 जय-जय जिघमि विचाह सार मानत मन-मन सब ॥  
 छिन छिन लोलुप' चित्त समुम्भि छाईत तातं षाठ ।  
 करत न सत समाज जिते अभिमानी कमठ ॥१०॥

हितहरिवश प्रशस मन नित सेवन विश्राम ।  
 चित्त निषेध विधि सुधि नहीं यितु' सचित निधि-नाम' ॥  
 वितु सचित निधि नाम काम सुमिरन दासन्तनु' ।  
 जाम घटी 'न बिसम्ब याम घृत' करत निकट जनु' ॥  
 ग्राम-पथ-आरन्य' धाम' हृद प्रेम प्रयित नित ।  
 ता मत' रत' सुखरास वाम-दृश' नवनिशोर' हित ॥११॥  
 श्रीराधा ग्रामन कमल हरि-भलि' नित सेवत' ।  
 नव-नव रति हरिवशहित वृन्दाविपिन यसंत ॥

१ निर्मल चरित्र २ पहा ३ बर्ष में थड़ा रमने वाले  
 परिष्ठ, ४ निदय, ५. महायात्रा, ६ पुनते हैं ७ विषय का  
 सोमी ८ धन ९ नाम लगी मंपति १० दास्य भक्ति,  
 ११ पढ़ी-महूर १२ मंगीभाव से छवा १३ माना, १४ पन  
 १५ रससी, १६ सिडान्त १७ सग हृय १८ श्रीराधा,  
 १९ श्रीदशाममुन्दर, २० अमर, २१ पान करते हैं ।

घृन्वाधिपिन घसत परस्पर वाहुदह धरि ।  
 चलत चरन गति मत्त करिनि-गजराज' गव भरि ॥  
 कुञ्ज भवन नित बेसि करत मद्-नवल अगाधा ।  
 नाना काम प्रसंग करत मिसि हरि श्रीराधा ॥१०॥

मुल बिहँसत हरियगहित रत्न' रसरसि प्रवीन ।  
 सुख-सागर नागर-गुह्य पुहुप-सँन' आसीन' ॥  
 पुहुप-मँन आसीन कीन निजु प्रेम पेनि-यस ।  
 पीन' उरज वर परसि भीन' नयसुरत-रग-रस ॥  
 एोन' निरसि मद्-मदन दीन पावन जु बिलसि दुल ।  
 मोनकेतु' निश्चित' सु लीन प्रिय निरसि बिहँस मुल ॥११॥

रम-सागर हरियगहित ससत सरित्त-धर' तीर ।  
 जग जस बिगव सु विस्तरत यसन जु कुञ्ज-कुटीर ॥  
 घसत जु कुञ्ज-कुटीर भीर' नवरंग' भामिनि' भर' ॥  
 घोरनील गौरांग सरमघन सन पीताम्बर ॥  
 घोर घटत बलिन-ममीर' कस-बेलि यस्त अस ।  
 नीरज गयन' सु रचित घोर धर' सुरतरग रम ॥१४॥

१ धूपिना २ गवि ३ पुणों की पम्पा ४ विरात्रमान,  
 ५ पुणुभीग हण ७ निरम ८ बासु ९ पगात्रि १० श्री  
 मनुनाश ११ अयन वृद्धि १२ श्री दामगु दर १३ श्रीगपा  
 १४ प्रमाव १५ मनप पवन १६ कमरना का पम्पा  
 १७ गृ बा ।



प्रिय विचित्र बन हरलि मन जिय जस वनु कुनत' ।  
 तिय सरनी सुनि सुष्ट' धुनि कियो तहाँ गमन सुरत ॥  
 कियो तहाँ गमन सुरत कत मिलि विलसत सबस ।  
 तन्त' रासमण्डल सुरत रस निर्त्त रग-रस ॥  
 सतत सुर बुम्बुभि यज्जत परसत सुमन लिय ।  
 अत केसि-अल बनूफि' मत्त इभराट' करिनि प्रिया ॥ १५ ॥  
 हरि विहरत बन जुगल वनु तड़ित' सुठपु' घन सग ।  
 कर किसलय-धल सन भल भरि अनुराग अभंग ॥  
 मरि अनुराग अमग रग अपने सचु पावत ।  
 अग अंग मनि सुमट अंग' मनसिअहि' लजावत ॥  
 पगु' दृष्टि ललिताधि तङ्गु निरखत रघमि करि ।  
 मङ्ग' धाधि रघि शिखिल ससत उच्छङ्ग' धरत हरि ॥  
 स्वाम सुभग तन विपिनधम धाम विचित्र बनाइ ।  
 तामहि सङ्गन जुगलजन कामकेसि सचु पाइ ॥  
 कामकेलि सचु पाइ वाइ-धल' प्रियाहि रिभाषत ।  
 धाइ धरत उर अङ्गु भाइ' गन कोक लजावत ।  
 आय' घघागुन' धनुर राइ रसरति सप्रामहि ।  
 धाइ सुजस जग प्रगट गाइ गुन जीवत ध्यामहि ॥ १७ ॥

१ बजात है २ अमत्र ३ तन्माल ४ मानौ ५ गजराज,  
 ६ विजली जैगा ७ मुन्दर सरोर ८ गुड ९ पामनेक को  
 १० स्थिर, ११ मांग १२ गोपी, १३ प्रम के दाप पन,  
 १४ भाप १५ आय १६ षोगुना ।

सरिता-तट सुरद्रुम निफट अलि ता सुमन सुधास ।  
 सलितादिक रसननि' विवस चलि सा कुञ्ज निवास ॥  
 चलि ता कुञ्ज निवास प्राप्त तव हित भग परपत' ।  
 रासस्यल उत्तम विलास सर्चि'र्मालि मन हरस्यत' ॥  
 सासु वचन सुनि चित हुलास, विरहज'दुख गलिता' ।  
 वासन्तन फुल ञुर्वाति मास माघघ सुख-सरिता ॥१८॥

परपत'पुलिन सुलिन'गिरा करपत' चितसुर चोर ।  
 हरपत हित नित मयल रस वरपत जुगलकिगोर ॥  
 वरपत जुगल किशोर जोर' नयकुञ्ज सुरत रन ।  
 मोर चत्र चय''चलत डोर फव''गिपिल सुभगतन''  
 घोर विशा सलितादि फोर र'ध्रनि निजु निरपत ।  
 थोर प्रीति अन्तर म, मोर दपति धीवि परस्यत ॥१९॥

श्रुतु यसात यन फय सुमन, चिन प्रसन्न नदकुञ्ज ।  
 हित-दपति रति कुशल मति, यितु'' सचितसुल-पुञ्ज ॥  
 यितु सचित सुल-पुञ्ज, गृञ्ज मधुरर सुनाद धुनि ।  
 रञ्ज मृदङ्ग, उपङ्ग, पुञ्ज, टफ, भंभि तात सुनि ॥  
 मनु ज्युर्वाति रस-गान जुञ्ज'' इय राग सहा विषयितु ।  
 भुञ्जन''रास यिलास,पुञ्ज मय सचि यमन्त श्रुतु ॥२०॥

१ आम्वा ग २ प्रयोगा करग है ३ रचना करके  
 ४ प्रगाप्त होने है ५ विरह मे जगन्न ६ दूर हो गया  
 ७ परगना ८ गलीन ९ गामगा है १० पाथग गहि  
 ११ गम १२ केत, १३ धारापा १४ पन १५ पगु  
 गमान १६ उभाण करग है ।

कहत-कहत न कही परे रहत जु मनहि विचारि ।  
 सहत-सहत बाढ़े भगति गृह-सन गुरु-हित गारि ॥  
 गृह-तन गुरु-हित गारि हारि अपनी करि मानत ।  
 चार वेद सुस्मृति शु चार धर्म कर्म न जानत ॥  
 हारि अविद्या करि विचार चित हित हरिवशहि ।  
 नारि-रसिक हृद'वन विहार महिमा न पर कहि ॥२१॥

सेवक श्रीहरिवश के जग भ्राजत<sup>१</sup> गुन गाइ ।  
 निशि विन श्रीहरिवशाहित हरसि चरण चित लाइ ॥  
 हरसि चरण चित लाइ जपत हरिवश गिरा-जस ।  
 मनसि-बचसि चित लाइ जपत हरिवश-नाम-जस ॥  
 श्रीहरिवश प्रताप-नाम नौका निनु सेवक ।  
 भवसागर सुख तरत निकट हरिवशनु सेवक ॥२२॥  
 इति श्रीहिं मत्त भजन प्रकरण ॥१०॥

## ॐ अथ श्रीहित-ध्यान प्रकरण ॐ

( गाथा पत्र )

सजयति हरिवशपद्म नामोच्चार-बद्धित सदा  
 सुबुद्धि रसिक-धनग्य प्रधान सतु साधु  
 मण्डसी महनी जयति ।

जय-जय श्रीहरिवश हित प्रथम प्रणउं शिर नाइ ।  
 परम रसव, निविष्ण ह्य, जसे कवित सिराइ<sup>२</sup> ।

१ गलाबट, २ श्रीदयामा-दयाम ३ श्री यमुना हृद,  
 ४ गोमित ५ गरिपूण ह्य ।

सुकविस्त सुधन्व गनिर्जं<sup>१</sup> समय-प्रवध-वन<sup>२</sup> ।  
 सुकवि विचित्र भनिर्ज<sup>३</sup> हरिजस लीन मन ॥  
 श्रोता सोइ परम सुमान सुनत वित रति कर ।  
 सोइ सेयक रतिक धनन्य विमल जस विस्तर ॥

सुजस सुनत, बरनत सुख पायो ।

श्रीवृन्दायन सख सुखदानी ।  
 कोर-भुङ्ग<sup>४</sup> नारद शुक गायो ॥

पर भूमि रमानि सुप्रद द्रुम-धहो  
 रतन-जटित घर भूमि रमानी<sup>५</sup> ॥

नित सरद-यसत मरा मधुकर-कृत  
 प्रफुलित फलित विविध बरन<sup>६</sup> ।

नाना द्रुम-शृङ्ग मञ्जु बर-धीयी  
 बहु पतपि<sup>७</sup> नादहि बरन ।

यन विहार राधारमन  
 सहीं सतत रहत श्याम-श्यामा सग

श्रीहरिवदा धरण शरण ॥  
 रहत सवा सगि सङ्ग, रास रग रस रसात उल्ला  
 सोला, सतित रसात, सम सुर-सात, परपत सुल-

१ गिनना पाद्वि २ श्रीवृन्दायन वा षष्ठ वासि  
 ३ बरना पाद्वि, ४ पाणिपुराण में को  
 ५ मन्त्र रग बे, ७ पी, ८ मन्त्र उग्राह ।

अतुलित रस वरपत सदा सुखनिधान वनवासि' ।  
 अद्भुत महिमा महि' प्रगट सुन्दरता की रासि ॥  
 सुन्दरता की रासि कनक बुति बेह दधि' ।  
 धारिज-वदन' प्रसन्न, हाँसि मृदु रंग सुवि ॥  
 सुधू', सुदु ससाट-पट, सुन्दर करण' ।  
 मैन कृपा अवलोकि प्रणत' आरसि' हरनं ॥

सुन्दर प्रीव, उरसि घनमाल ।

चारु अंस वर, बाहु विशाल ॥

उबर सुनाभि, चारु कटि बेश ।

चारु नासु, शुभ चरण सुवेश' ॥

शुभ चरण सुवेश मत्त गन घर गति,

पर उपकार बेह धरन ।

मिज गुण विस्तार अघार अवनि पर,

धानी विशद सुविस्तरन ॥

करुणामय परम पुनीत कृपानिधि,

रसिक अनन्य सभा भरन' ।

ज जग-उद्योत' ११ ध्यासकुल-शीपफ,

धोहरिवदा चरण वारणं ॥२॥

१ श्री घृणावन के वासी २ पृथ्वी ३ काँति, ४ मुगधमल  
 ५ सुन्दर अकृति ६ जग ७ वारणागत, ८ बट ९ सुन्दर,  
 १० सभा के भूषण, ११ जग में प्रकाश फैमाने वाले ।

सारासार विवेकी, प्रेमपुञ्ज अद्भुत अनुराग ।  
हरिभक्त रस मधु मत्त, सर्व त्यक्त्वा 'दुस्सयम' कुल-कर्म ॥  
कर्म छान्दि कर्मठ भजे<sup>१</sup>, ज्ञामी ज्ञान विहाय<sup>२</sup> ।  
व्रतधारी व्रत तर्जि भजे श्रयनाविक<sup>३</sup> चितलाय ॥  
श्रयनाविक चित लाइ, जोग, जप-तप तजे ।  
घोरी कर्म सफाम सकल सजि सब भजे ।  
साधन विविध प्रयास<sup>४</sup> ते सकल विहावहीं ।  
श्रवण, कथन, सुमिरन, सेवन चित लावहीं ॥  
अधन, वदन अद वासन्तन ।

सत्य और आत्मा-समपन ॥

ये नव-सखन भक्ति बढ़ाई ।

तब तिम प्रेमसंक्षणा पाई ॥

पाई रस भक्ति गूढ़<sup>५</sup> जूग-जूग जग,

दुस्सम भव<sup>६</sup> इन्द्रादि विधि<sup>७</sup> ।

आगम अद निगम पुराण अगोघर<sup>८</sup>,

सहज माधुरी रूप निर्धि ॥

धनभय<sup>९</sup> धामदक<sup>१०</sup> दनिजु सम्पत्ति,

गुप्त सुरीति प्रगट करन ।

१ छोड़कर, २ बटिना से छूटन जाने, ३ मजद करने मने ४ छोड़कर, ५ नबपा भक्ति ६ परिश्रम ७ गुप्त = तिबजी, ८ अज्ञा, ९ धरम १० निभय करने जाने ।

जय जग-उद्योत व्यासकुल-दीपक,

श्रीहरिवंश चरण-शरण ॥३॥

प्रगटित प्रेम प्रकास सकलजंतु विशरी-कृत<sup>१</sup> चिरां ।

गत<sup>२</sup> कलि तिमिर-समूहं<sup>३</sup>, निमल अकलक उदित जग चंद्र

विशव चन्द्र तारा-तनय शीतल फिरण प्रकासि ।

अमृत सींचत मम हृदय सुखमय आनंद रासि ।

सुखमय आनंद रासि सकल जन शोक हर ।

समुन्नि जे प्राये शरन से डरत न कास डर ॥

वियो वान तिन अभय दृढ़-दुष्ट सब घटे ।

नित नित नय-नव प्रेम कर्म-धम्यन फटे ॥

फटे कम-धम्यन सशरी ।

सुख-सागर पुरित धति भारी ॥

विधि निषेध शृङ्खला<sup>४</sup> छुटावै ।

निज आलय<sup>५</sup> बन आनि बसावै ॥

आलय बन बसत सग पारस के,

आयस<sup>६</sup> फनक समान भय<sup>७</sup> ।

माँगौं मन मनसि वासि अपमो करि,

पूरण-नाम सदा हृदय ॥

सेवक गुन-नाम आस परि धरनै,

अथ निजु वासि हृपा करन ।

१ शीतल विद्या, २ दूर हुए, ३ मधुकार समूह,  
४ बंधन ५ घर, ६ सोहा, ७ होगया ।

जय जग-उद्योत व्यासकृल-वीपक,  
श्रीहरिवश घरण-शरण ॥४॥

॥ धृष्य ॥

पङ्कत-गुनत गुन-नाम सदा सत-सगति पार्व ।  
अरु यादु रस रीति विमल वामी गुन गार्ध ॥  
प्रेम लक्षणा भक्ति सदा आनंद हितकारी ।  
श्रीराधा-युग घरन प्रीति उपज अति भारी ।  
निज महल-टहल नवकुञ्ज में नित सेवक सेवा करन ।  
निशचिन समीप सतत रहै सु श्रीहरियश घरण शरण ॥५॥

इति श्रीहित ध्यान प्रकरण ॥११॥

॥ अथ श्रीहित-मंगल-गान प्रकरण ॥

( राग मूहो बिलावत )

ज-ज श्रीहरिवग व्यासकृल-मण्डना<sup>१</sup> ।  
रसिक अनम्यनि मुख्य-गुरु जन भय लण्डना<sup>२</sup> ॥  
श्रीपुन्वावन भास रास रस भूमि जहाँ ।  
श्रीदत्त श्यामा श्याम पुत्तिन मञ्जुस तहाँ ॥  
पुत्तिन मञ्जुस परम पावन त्रिविध तहाँ मास्त<sup>३</sup> यहै ।  
कुञ्ज भवन विचित्र दोभा मदन नित सेवत रहै ॥



तहाँ सतत व्यासनवन रहत वसुध विहङ्गमा<sup>१</sup> ।  
 जे-जे श्रीहरिवश ध्यासकुल मण्डना ॥१॥  
 जे-जे श्रीहरिवशचन्द्र उदित सदा ।

द्विजकुल-कुमुद प्रकाश विपुल सुख-सम्पदा ॥  
 पर-उपकार विचारि सुमति जग विस्तरी ।  
 कदणासिन्धु कृपाल कास भय सब हरी ॥

हरी सय फलिकाल की भय कृपारूप जु वपु<sup>२</sup> धरणी ।  
 फरत धे अनसहन<sup>३</sup> निवक सिनहुं पे अनुग्रह<sup>४</sup> करणो ॥  
 निरभिमान, निर्वैर, निठरम, निष्कलक जु सदा ।  
 जे-जे श्रीहरिवशचन्द्र उदित सदा ॥२॥  
 जे-जे श्रीहरिवश प्रशसित सब बुनी<sup>५</sup> ।  
 सारासार विवेकित<sup>६</sup> कोविद<sup>७</sup> षट्गुनी<sup>८</sup> ॥  
 गुप्त रोति धावरण<sup>९</sup> प्रगट सब जग विये ।  
 ज्ञान धर्म-व्रत-रुम भक्ति-किंकर<sup>१०</sup> किये ॥  
 भक्ति-हित जे शरण प्राये हृद-दोष<sup>११</sup> जु सय घटे ।  
 कमल-कर जिन अभय बीने कम-अग्र्यन सय फटे ।  
 परम सुखद सुशील सुन्दर पाहि<sup>१२</sup> स्यामिनि मम पनी ।  
 जे-जे श्रीहरिवश प्रशसित सब बुनी ॥३॥

१ पापों को नष्ट करने वाला २ शरीर, ३ ईर्ष्या  
 ४ कृपा, ५ संसार ६ विवेक कर दिया प्रमग करके दिया  
 न्ये ७ धनुष ८ धनेर गुणों वाला, ९ क्रिया, १० दाढ,  
 ११ मुग-दुग प्राप्ति १२ रक्षा करें ।

जै जै श्रीहरिवश नाम-गुण गाइ है ।

प्रेम-सञ्जणा भक्ति दृष्टक करि पाइ है ॥

अरु बाढ़े रस रीति प्रीति चित ना टरे ।

जोति विषम-पसार कीरति जग विस्तरै ॥

विस्तरै सब जग विमल कीरति साधु-सगति ना टरे ।

वास वृन्दाधिपिन पावै श्रीराधिका नू कृपा करै ।

चतुर जुगल फिरोर सेवक दिन प्रसावहि<sup>१</sup> पाइ है ।

जै-जै श्रीहरियश नाम-गुण गाइ है ॥४॥

इति श्रीहित मंगल प्रकरण ॥१२॥

## ॐ अथ श्रीहित पाके धर्मो ॐ

(गवया)

साधन विविध सकाम मति,

सब स्वारथ सफल सबें जु धर्मोति ।

ज्ञान ध्यान व्रत कर्म जिते सब,

बाहू में नहि मोहि प्रसीति ॥

रमिक अनन्य निसान<sup>२</sup> यत्रायो,

एक दयाम-प्यामा पर प्रीति ।

श्रीहरियश घरण निज सेवक,

विचल<sup>३</sup> नहीं दांदि रस-रोति ॥१॥

१ इना का, २ नगाट ३ टिय नहीं ।

( क्विरीट )

श्रीहरिवश धरम्म प्रगट्ट, निपट्ट-

क' ताको उपमा को नाहिन ।

साधन ताको सब नव लक्षण',

सच्छिद्रन वेग विधारत जाहि न ॥

जो रस-रोति सदा अविच्छेद',

प्रसिद्ध विरुद्ध तजस्त क्यों ताहि न ।

जो वे धरम्मी कहायत हो,

तो धरम्मी धरम्म समुद्भूत काहि न ॥२॥

जो वे धरम्मिन सो नहि प्रीति,

प्रतीति प्रमानत धान' न धानियो' १

एकहि रोति सबधि सो हेत,

समीति' समेत'समान न मानियो ॥

धात सो धात मिले न प्रमान,

प्रकृति- विरुद्ध जुगति' को ठानियो ।

श्रीहरिवश के नाम न प्रेम,

धरम्मी धरम्म समुद्भूयो क्यों जानियो ॥३॥

श्रीहरिवश यद्यपि प्रमानि फे,

साकल' सग सय जु विसारत' १० ।

१ पूण रूप स, २ मयलदाणा मक्ति, ३ निविरोध,  
 ४ दूसरा ५ माना ६ प्रीति ७ यक्षिण ८ युक्ति ९ गक्ति  
 उगायत, १० मुसा दठ है ।

ससृति<sup>१</sup> मांभ<sup>२</sup> घरपाइ<sup>३</sup> कं पायो जु,

मानुषदेह<sup>४</sup> कृपा कत डारत<sup>५</sup> ॥

बपों न करत घरम्मिन यो सग,

जानि-बूझि कत धान<sup>६</sup> विचारत ।

जो पै घरम्मी मरम्मी हो तो,

घरम्मिन सों कत भतर पारत ॥४॥

( इन्द्रा एव )

जो घरम्मी घरम्म कह्यो जु करी,

तो घरम्मिन सग बड़ी सघतें ।

अपुनर्भव<sup>७</sup> स्वग जो नाहि घराघर,

तो सुख-मरप<sup>८</sup> कही पवत ॥

कह्यो काहे प्रमान बघन्न विसारत,

प्रेमो घमम्य भये जवत ।

तब श्रीहरियग<sup>९</sup> पही जु कृपा करि,

सांखी प्रथोप<sup>१०</sup> सुयो घबतें ॥५॥

( गवदा गुण )

श्रीहरियग जु एही श्याम श्यामा-

पद-कमल-सगि<sup>११</sup> गिर नायो ॥

ते म बरुन मानत गुदडोही,

निनि दिन परत घापनी भायो ॥

१ गमा २ पञ्चिना मे ३ मह इग्न तो ४ इन्द्रो  
 पा ५ मूर्ति ६ श्रीशक्ति मुग ७ जान ८ रथिक उताफ

इत व्योहार न उत परमारय,  
 बीच हो बीच जु जनम गमायो ।  
 जो धरमिम सौ प्रीति करत महि,  
 कहा भयो धर्मो जु कहायो ॥६॥

(ध्रुवकी मन्त्र)

करो श्रीहरिवश [ उपासक सग जु,  
 प्रीति-तरङ्ग सुरङ्ग' बह्यो ।  
 करो श्री हरिवश को रीति सबै,  
 कुल-लोक विरुद्ध जु जाइ सह्यो ।  
 करो श्रीहरिवश के नाम सौ प्रीति,  
 जा नाम-प्रताप धरम्म सह्यो ।  
 जु धरम्मी धरम्म स्वरूप कह्यो,  
 विसरी जिन श्रीहरिवश कह्यो ॥७॥

(किरीट)

श्रीहरिवश धरम्म जे जानत,  
 प्रीति को प पि' तहो मिलि सोमत ।  
 श्रीहरिवश धरम्मिन माँक',  
 धरम्मी सुहात' धरम्म सँ बोलत ॥  
 श्रीहरिवश-धरम्मि कृपा करै,  
 तासु कृपा रस मादक डोमत ।

१ अनुराग पूण, २ गौठ, ३ मध्य में, ४ शोभित होते हैं ।

श्रीहरियश की बानी-समुद्र की,  
भीन भयो जु अगाध बलोत्त<sup>१</sup> ॥८॥

( धन्व इविता )

व्रत सयम कम सु धर्म जिते,  
सब शुद्ध-विरुद्ध विद्यानत<sup>२</sup> है ।  
अपनी अपनी करतूत<sup>३</sup> करें,  
रस भादक सक<sup>४</sup> न आमत है ॥

हरियश-गिरा रसरोति प्रसिद्ध,  
प्रतीति प्रगट्ट प्रमानत है ।  
बलि जाठ<sup>५</sup> अपने घरम्मिन की,  
जे घरम्मी घरम्महि जानत है ॥९॥

( मरिच धन्व )

श्रीहृग्बिग घरम्म सुनत जु,  
छाती सिरात घरम्मिन की ।  
घरम्म सुनत प्रसन्न ह्वं बोलत,  
बोलनि मोठी घरम्मिन की ॥

घरम्म सुनत पुलकित रोमनि,  
हो बलि प्रेमी घरम्मिन की ।  
सु घरम्म सुनाय घरम्महि जांचत,  
घाहो वृषा जु घरम्मिन की ॥१०॥

स्यय

श्रीहरिवंश प्रसिद्ध घम समुर्भं न अल्प-सप' ।  
 समुम्भी श्रीहरिवंश-कृपा सेषहु घमिन-अप ॥  
 धर्मो विनु नहि घम, माहि विनु घम शु धर्मो ।  
 श्री हरिवंश-प्रताप मरम जानहि जे मर्मो' ॥  
 श्री हरिवंश नाम धर्मो जु रति तिम शरण्य सतत रहै ।  
 सेवक निशिविन घमिनि मिल श्रीहरिवंश सुजसकहै ॥ ११

इति श्रीहिल पाके धर्मो प्रकरण ॥ १३ ॥

## ॥ अथ काचे धर्मो ॥

( सबवा किरिट )

श्री हरिवंश घरम्मिन के सग,  
 भागे ही भागे जु रीति बखानतै ।  
 आपुने जानि कहै जु मिले मन,  
 उत्तर फेरि चवगुन<sup>१</sup> ठामत ॥  
 बैठत जाय विघमिन में तघ,  
 घात धरम्म की एकौ न भागत ।  
 काचे धरम्मिन के सुनौ छब,  
 धरम्मी धरम्म-मरम्म<sup>२</sup> न जानत ॥ १

१ कम पुष्य वाना २ रहस्य जानने भासा, ३ वर्णन करते हैं ४ बीगुना ५ पम का मर्म ।

( समान )

पातनि कूठनि खान कहैं मुझ,  
 वेत प्रसाद अनूठीही' छाँडत ।  
 प्रथ प्रमानि फैं जो समुझाइये,  
 ती तव प्रोध-रारि' फिर भाँडत' ॥  
 सखिद्यन छाँड़ि प्रेग की घातहि,  
 केरि जाति-कुल रीति प्रमानत ।  
 फाचे घरम्मिन के सुनौ छन्द,  
 घरम्मी घरम्म-मरम्म न जानत ॥२॥

( विराट )

घरम्मिन भाँझ प्रसन्न ह्वैं बँठत,  
 जाइ विधमिन भाँझ उपासत' ।  
 सासच लागि जहाँ जैसे तहाँ ससे,  
 सोई-सोई तिन मध्य प्रकासत' ॥  
 शबहि \* होत मुम्हार की फूकर',  
 तासी हृद गुण-रीति न मानत ।  
 फाचे घरम्मिन ये सुनौ छन्द,  
 घरम्मी घरम्म-मरम्म न जानत ॥३॥

१ विना प्रणाम छिये २ भगदा ३ घरम्म कर देने  
 है, ४ उमी छान ५ उपागना करत है ६ विगाना दन है,  
 ७. वृषा ही ८ कुमा ।



नाना तरङ्ग करत छिन ही छिन,  
 रोवत रेंट न सार सम्हारत ।  
 तच्छिदन प्रेम जमाइ बहंत सु,  
 मेरीसो रीति काहे अनुसारत<sup>१</sup> ॥  
 तच्छिदन भगरि रिसाइ कहत सु,  
 मेरी घरावर घोरनि मानत ।  
 काचे घरम्मिन के सुनों छन्व,  
 घरम्मी घरम्म-भरम्म न जानत ॥४॥

मेरी सो प्रेम, मेरी सो कीरतन,  
 मेरी सो रीति काहे अनुसारत ।  
 मेरी सो गान, मेरी सो बजाइवो,  
 मेरी सो कृत्य सब सु विसारत<sup>२</sup> ॥  
 छाँड़ि मजवि गुहन सो बोलत,  
 कघन-काँच घरावर मानत ।  
 काचे घरम्मिन के सुनों छन्व ।  
 घरम्मी घरम्म-भरम्म न जानत ॥५॥

( समाप्त )

देखे छु देखे भसे सु भसे सुम,  
 आपनी घोर परायी न जानत ।  
 हों जू सवा रस रीति यखानत,  
 मेरी घरावर ठागनि<sup>३</sup> मानत ॥

१ अनुकरण करते हो, २ भुला देते हो, ३ ठपने  
 वारों को ।

कैसे-धों पाऊँ तिहारे हृदं फों,  
 भ्रान द्वार<sup>१</sup> के मोहि न जानत ।  
 फाचे धरम्मि न के सुनो छन्द,  
 धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥६॥

और तरंग सुनो प्रति मोठी,  
 मखीन के नाम परस्पर बोलत ।  
 तच्छिदन के गहत मुष्टि<sup>२</sup> हनि,  
 सामत-गुद्ध<sup>३</sup> बचायत बोलत ॥  
 तच्छिदन बोले तू प्रेत, तू राक्षस,  
 फेरि परस्पर जाति प्रमानत ।  
 फाचे धरम्मि न के सुनो छन्द,  
 धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥७॥

जायो धरम्म देखी रस-रोति नु,  
 निष्टुर बोलत बदन प्रकासित ।  
 ऐसे न जैसे रहे भँभरडव<sup>४</sup>,  
 पाछिलियों जु बरी निरभासित<sup>५</sup> ॥  
 हूँ हे फेरि जैसे बे तसे हम,  
 धारे ते<sup>६</sup> धाये मयासिन मानत ।

१ धन्य मंत्रालय के २ पगा मारकर ३ काम मार्ग

४ भपराब ५ प्रकाशित ६ छन्दन ग ।

काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,

धरम्मी धरम्म-भरम्म न जानत ॥८॥

एक रिसाने-से रुखे-से बोलत,

पूछत रीति भभूकत धावत ।

एक रंगमगे घोसत घासत,

मानिलेहूँ<sup>१</sup> बपुरे<sup>२</sup> जु जनावत ॥

एक बवन्न क<sup>३</sup> साँधी-साँधी कहँ,

घिल सघाई की एकौ न घामत ।

काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,

धरम्मी धरम्म-भरम्म न जानत ॥९॥

एक धरम्म समुग्धे विमाडव,

गुशाई के छ<sup>४</sup> जु षगस पुजावत ।

मूल न मत्र टटोरा की रीति<sup>५</sup>,

धरम्मिन पूछत बदन बुरावत<sup>६</sup> ॥

एक मुलम्मा<sup>७</sup> सौ बेत उघारि,

जु बत्सभ-सौ-बत्सभ परमानत<sup>८</sup> ।

काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,

धरम्मी धरम्म-भरम्म न जानत ॥१०॥

१ घपनी बढ़ाई २ रक, ३ मुस से ४ दुमाई जू क  
दिव्य बनकर, ५ अंधा व्यक्ति जिन प्रकार टटोरा कर वस्तु का  
पता समाना पाहता है, वह रीति, ६ छिपात है ७ भोजन  
८ सौ बिकबल्लमों प्रेमोजनों-की प्रीति से थीरापाबल्लमवे प्रेम को  
प्रमाणित करते हैं ।

एक गृहम सौं घाद<sup>१</sup> करत,  
 जु पडित-मामी ह्वं बीभहि ऐठत ।  
 एक दरव्य के जोर बरज्वट<sup>२</sup>,  
 घासन चापि सभा मधि बँठत ॥  
 एक जु फेरि रीति उपदेगत,  
 एह बडे ह्वं न बात प्रमानत ।  
 बाचे घरम्मिन के सुनीं छन्द,  
 घरम्मो घरम्म-भरम्म न जानत ॥११॥  
 एक घरम्मो अनय कहाय,  
 बडाई हौं म्यारी ये बाजी-सौ माँडत<sup>३</sup> ।  
 घोर के घाप सौं घाप कहत,  
 दरव्य के काज घरम्महि छाँडत ॥  
 योतत योत बटाऊ<sup>४</sup> मे लागत,  
 ह्वं गुदमानी<sup>५</sup> न बात प्रमानत ।  
 बाचे घरम्मिन के सुनीं छन्द  
 घरम्मो घरम्म-भरम्म न जानत ॥१२॥

( रीत )

परदे<sup>६</sup> मुनहु मुजान जहाँ कछु घोर कचाई<sup>७</sup> ।  
 नक्त हरे परसप्र, नतह<sup>८</sup> ता कहें कुरवाई ॥

१ विवाद २ जबदम्नी ३ मान प्रविष्ट ४ घट्ट  
 बरो प्राप्त करन को बन्नु समझत है ५ अगिपित ६ गुदने  
 वा घनिमान गये घान ७ पराणा बरमो है ८ अगिपिता  
 ९ घन्दवा ।

काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,

धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥८॥

एक रिसाने-से ख्खे-से बोसत,

पूछत रीति नभूकत घायत ।

एक रंगमगे बोसत चालत,

मामिलेहूँ घपुरे<sup>१</sup> जु जनावत ॥

एक बदन क<sup>२</sup> साँची-साँची कहै,

धिस सघाई को एकी न धामत ।

काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,

धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥९॥

एक धरम्म समुज्झे विनाऽय,

गुर्शाई<sup>३</sup> के हूँ<sup>४</sup> जु खगत पुजावत ।

भूस न मत्र टटोरा की रीति<sup>५</sup>,

धरम्मिन पूछत बधन दुरावत<sup>६</sup> ॥

एक मुलम्मा<sup>७</sup> सी बेत चघारि,

जु यत्सभ-सौ-वत्सभ परमानत<sup>८</sup> ।

काचे धरम्मिन के सुनों छन्द,

धरम्मी धरम्म-मरम्म न जानत ॥१०॥

१ अपनी बढाई २ रंक ३ मुग से, ४ मुर्शाई जू के सिप्य यमकर, ५ भंग्या म्यक्ति बिद्य प्रकार टटोल कर बस्तु का पठा समाना भाइता है, वह रीति, ६ छिपान है ७ भोज ८ सौकिक-मठों प्रेमोक्तियों-को प्रीति से धीरापावल्लभके प्रेम को प्रमाणित करते हैं ।

एक गृहन सों घाव' करत,  
 जु पडित-मानी ह्वं जीमहि ऐठत ।  
 एक दरख के जोर खरखट',  
 घासन घांपि सभा मधि बैठत ॥  
 एक जु फेरि रीति उपवेशत,  
 एक बड़े ह्वं न बात प्रमानत ।  
 काचे घरम्मिन के सुनों धन्व,  
 घरम्मो घरम्म मरम्म न जानत ॥११॥  
 एक घरम्मो अनन्य कहाय,  
 बडाई'की न्यारी ये बाजी-सो मांडित' ।  
 और के घाप सों घाप कहत,  
 दरख के काम घरम्महि छांडित ॥  
 बोलत बोल बटाळ' से सागत,  
 ह्वं गुरुमानो'न बात प्रमानत ।  
 काचे घरम्मिन के सुनों धन्व,  
 घरम्मो घरम्म मरम्म न जानत ॥१२॥  
 ( रोना )  
 परछे' सुनहु सुमान जहाँ पछु और बचाई' ।  
 भक्त कहे परसप्त, नतद' सा कहें बुरवाई ॥

१ विवाद २ जबदम्नो, ३ मान प्रतिष्ठा ४ बहुत  
 बढी प्राप्त करन की बन्धु ममभन है ५ अपरिचित ६ गुरुपन  
 वा अभिमान रगन दान ७ परीक्षा करनो है ८ अपरिपक्वा,  
 ९ अन्यथा ।

दिये सराह<sup>१</sup> सुख रहें सुख में विन राती ।  
 खेवे कौं शु सजाति, सरथ कौं होत विजाती<sup>२</sup> ॥१३॥

( किरिट )

सैं उपवेश कहाइ धनन्य,  
 अहाइ धनपित<sup>३</sup> जाइ गटछत<sup>४</sup> ।  
 प्राप्त करे विषयीन<sup>५</sup> के प्रागे,  
 नु देखे में जोरत हाथ लटछत<sup>६</sup> ॥  
 केतिक प्रापु, कितेक-सौ जीवन,  
 काहे विनासत<sup>७</sup> काज हटछत<sup>८</sup> ।  
 श्रीहरियश घरम्मिन छांड़ि,  
 घर घर काहे फिरत भटछत<sup>९</sup> ॥१४॥

( मामती )

साकत सग अगिअ-सपट्ट<sup>१०</sup> ,  
 सपट्ट-जरसा<sup>११</sup> क्यों सगत कीज ।  
 साधु सुबुद्धि समान<sup>१२</sup> सु ससन,  
 जानि कैं शोखल सगत कीज ॥  
 एक नु बाचे प्रकृति विरुद्ध<sup>१३</sup> ,  
 प्रकृति विरुद्ध करं तौ का बीज ।

---

१ प्रशंसा करते हैं, २ विषयी ३ प्रभु को धरण दिये  
 विना, ४ ग्रासते हैं ५ संधार में फँस सोग, ६ दौलता पूर्वक,  
 ७ बिनाग करते हैं ८ धनने काय को बिगाड़ते हैं, ९ भटपते  
 फिरते ही १० धनि की ब्यासा ११ सपट्टो में जसती हुई  
 १२ समदृष्टि वाल १३ धर्म की प्रकृति से विरुद्ध भावना  
 करने वाले ।

से प्राणि के दाभे'गये भजि पानीमें,

पानी में प्राणि सग ती का कीर्ज ॥१५॥

प्रीति भग<sup>१</sup> वरमस रस रीतिहि,

श्रीहरिघश घघन विसरायहु<sup>२</sup> ।

प्राप प्रापनी ठौर जहां तहाँ,

करि विरुद्ध सब प निवरायहु<sup>३</sup> ॥

एक ससार बुष्ट की सगति,

ताहू में तुम पृष्ट करायहु ।

बिनती फरहुं सकल धमिन सों,

धरमी ह्वं जिन नाम धरायहु<sup>४</sup> ॥१६॥

( कवित्त-दण्डक )

स्वारथ सकल सजि, गुण-धरणम भजि,

गुण-नाम सुनि कधि,<sup>५</sup> सतन सों सग करि ।

काल-व्यास<sup>६</sup> मुख परधी, कफ घात पित्त भरधी

भ्रम्यौ कत<sup>७</sup> धनन्य कहे की जिय साज धरि ॥

सेयक निषट रस रीति प्रीति मन धरि-

हितहरिघश, कुल-जानि सय परिहरि<sup>८</sup> ।

बाचे रसिकनि सों बिनती परत ऐसी,

गोविन्द दुहाई भाई जो न सेयी दयामा हरि ॥१७॥

१ जने हुए २ प्रेम मूल्य, ३ भुगाने हो ४ निष्ठा कराने हैं ५ धननामी न कराया ६ कथन पर ७ बात धनो कर्ष ८ भ्रम म कर्षों पट रहा है ९ दास दे।



॥ छप्पय ॥

प्रगटित श्रीहरिवंश सूर<sup>१</sup> बुन्हुभि बन्नाइ घल ।  
 मवम मोह मव मलित<sup>२</sup>, निबरि<sup>३</sup>निबसित<sup>४</sup>म-वस<sup>५</sup> ॥  
 भम<sup>६</sup> भाग्य<sup>७</sup> भय भोत<sup>८</sup>, गव्व बुज्जन रज<sup>९</sup> सण्डन ।  
 लोभ-क्रोध-कलि-कपट, प्रवस पासड विहडन<sup>१०</sup> ॥  
 सुष्मा-प्रपच-मत्सर विसन<sup>११</sup>, सव वण्ड<sup>१२</sup> निबस करे ।  
 शुभ भशुभ बुगं विष्यसिबल, तव जेसि-असि भग उचरे ॥१८॥  
 इति काशे धर्मी प्रकरण ॥१४॥

## ॥ अथ अलम्य लाभ प्रकरण ॥

( गाराण धम् )

हरिवंश नाम है जहाँ तहाँ-तहाँ उवारता,  
 सकामता तहाँ नही कृपासुता विशेषिये<sup>१</sup> ।  
 हरिवंश नाम सीन जे भजातघात्रु<sup>२</sup> से सदा,  
 प्रपच वम घाबि वं तहाँ कछु न वेसिये ॥  
 हरिवंश नाम जे फहं धनन्त सुबस से सहै,  
 बुराप<sup>३</sup> प्रेम की वशा तहाँ प्रसक्त वेसिये ।  
 सोई धमन्य साधु सो जगत्ता पूजिये सदा,  
 सु धन्य-धन्य विश्व में जनम्म सत्य लेसिये ॥१॥

१ घूर बीर २ मत्त डालि ३ निरादर करने ४ पीम  
 डामे, ५ पापक के समूह, ६ भ्रम, ७ भाग गया, ८ डरकर,  
 ९ रजोगुण, १० मष्ट कर दिये, ११ दुर्म्यसन, १२ सेमा,  
 १३ मधिकरहती है १४ जिसका कोई शत्रु न हो, १५ दुर्मम ।

श्रीध्यासनन्द नाम को अतन्म्य लाभ जानिये ।  
हरिवशचन्द्र जो कही, सुचित्त हूँ सर्व सही,  
 बचन चार माधुरी सु प्रेम सौं पिछानिये ॥  
सुन प्रपन्न' जे भये, अभद्र' सब के गये,  
 तिनहै मिसे प्रसन्न हूँ न जाति-भेद मानिये ।  
सुभाग-साग' पाइ ही, प्रशंसि कठ साइ ही,  
 सिराय नम देखि कैं, अनेद बुद्धि आनिये ॥  
वृषासु हूँ सु भासि' है, परम्प पुष्ट रासि है,  
 श्रीध्यासनन्द नाम को अतन्म्य लाभ जानिये ॥२॥  
हरिवश नाम सबसार छोड़ि सेत बहुत भार,  
 राज धिभी' देखि क विष विषम्भ' भोवहीं ।  
जोष' होत साधु सग आनि करत प्रीतिभग,  
 मान-काव' राजसीन' के जु मुबल' बोवहीं' ॥  
जहां-सहीं' अन्न खात, सखी कहत आप गाल,  
 सबस छोस दुन्दु जात रात सय सोवहीं ।  
प्रसिद्ध ध्यासनन्द-नाम जानि-भूक्ति छोड़ हों,  
 प्रमाद से सिये बिना जनम्म बाद' सोवहीं ॥३

---

१ शरणागत २ अमगत ३ भाग्यजन म ४ रग की  
 रीति का वर्णन करण ५ धन-वसव ६ इन्द्रियों क दुपट विपण  
 ७. यदि ८ सम्मान प्राप्त करने क विषय ९ धनी लोगों क  
 १० मुग ११ देगने है १२ हर जगह का १३ ध्यव ही ।

हरिवश नाम होन, सीन-वीन<sup>१</sup> देखिये सबा,  
 कहा भयो बहुत ह्व पुरान वेव पढ़वहीं<sup>२</sup> ।  
 कहा भयो भते प्रवीन, जानि मानिये जगत,  
 लोकरीभ सोभ<sup>३</sup> कौ बमाइ घात गढ़वहीं<sup>४</sup> ॥  
 कहा भयो किये करम्म जम दाम बेत बेत,  
 फलनि पाइ उच्च-उच्च वेगलोक चढ़वहीं<sup>५</sup> ।  
 परधो प्रवाह काल के कदापि छूटि है नहीं,  
 श्रीध्यासमम्बन नाम जो प्रतीति सो न रटवहीं<sup>६</sup> ॥४

इति श्री असम्यताम प्रकरण ॥१५॥

## ॥ अथ मान मिद्धान्त प्रकरण ॥

( बोधा )

यानी श्रीहरिवश की, सुनहु रसिक चित्त लाइ ।  
 जेहि विधि भयो भयोसनी<sup>७</sup>, सो सय कहौ समुझाय ॥१॥  
 श्रीहरिवश जु फधि कहौ, सोर<sup>८</sup> सुनाऊ<sup>९</sup> गाइ ।  
 यानी श्रीहरिवश की, नित मन रह्यो समाइ ॥२॥  
 श्रीहरिवश अबोलनी, प्रगट प्रेम रस सार ।  
 अपनो बुद्धि न कछु कहौ, सो यानी<sup>१०</sup> उच्चार<sup>११</sup> ॥३॥

१ दोन-हीन २ पढ़ते हैं, ३ गोमा ४ मढ़त है,  
 ५ चढ़ते हैं ६ रटता है, ७. निराट मान ८. वह ९ श्रीहरिवश  
 की वाणी म १० बर्णन किया गया है ।

हितहरिवदा जु श्रीहर्षी, स्वपति रस समतूल' ।  
 सहज समीप प्रबोसनी, फरत जु ध्यानंद मूल ॥४॥  
 बाहे कों डारति' भामिनी, हों जु पहति इफ यात ।  
 नेहु घदन सम्मुत्त बरो, दिन-दिन कल्प सिरात' ॥५॥  
 वे घिसवत तुष घदन विषु', तू निज घरण निहारति ।  
 वे मृदु विद्युक प्रसोवहीं', तू कर सों कर डारति' ॥६॥  
 घवन ध्योन सवा रहै, रूप सनद प्रगाथ ।  
 प्राणरवन सों कत बरत, विनु प्रागस' अपराध ॥७॥  
 घित कृपा बरि भामिनी, सोने बट लगाइ ।  
 मुग सागर पूरित भये, वेखत हियो सिराइ' ॥८॥  
 सेयव गरण सवा रहै, घनत नहीं विभाम' ।  
 यानी श्रीहरियण बी, बं हरियणहि नाम ॥९॥

एनि श्रीमानमिदान्त प्रकरण ॥१६॥

एनि श्रीगमांतरणाम्नी ( मवकवा ) इत  
 मवक बागो शमाता ।

---

१ ममान २ मानना म्ना हा ३ धरति हन है,  
 ४ मुग पण ५ मन्ना है ६ ह्याती हा ७ अपराध  
 ८ नाकम ताता है ९ निर्दिष्ट निति ।

## ॥ फलस्तुति ॥

( छप्पय )

जयति-जयति हरियश-नाम-रति सेवक यानी ।  
 परम प्रीति रस रीति रसि कलि प्रगट बक्षानी ॥  
 प्रेम सपती धाम सुखद विश्राम घरम्मिन ।  
 मनत-गुनत गुन गूढ़ भक्त भ्रम भगत करम्मिन ॥  
 श्रीभ्यासनन्द भरविद धरण-भव तासु रंग-रस राचहीं ।  
 श्रीकृष्णदास हित हेत सौं जे सेवक यानी वाचहीं ॥१॥

कै हरियशहि नाम धाम बुद्धावन धस गति ।  
 वाणी श्रीहरियश सार सख्यौ सेवक-मति ॥  
 पठन भवण जो करे प्रीति सौं सेवक वाणी ।  
 भव निधि बुस्तर यदपि होय तिहि गोपद-यानी ॥  
 श्रीभ्यासनन्द परसाव सहि युगल रहस दरस जु उर ।  
 भनि बुद्धावन हित रूप यलि सुख बिससंभायुक धामधुर

प्रथ सिन्धु तें सोधि रग कलि माहि बढ़ायी ।  
 यह हित कृपा प्रसाद भ्रमो भाजन भरि पायी ॥  
 रसिक मनौ सुर-सभा भानि तिनको वरसायी ।  
 श्री सेवक निजु गिरा मोहिनी वाटि पिवायी ॥  
 पठन अथण निशिदिन करे बम्पति सुधाम सुख सहै भलि  
 वाणी स्वरूप हरियश-सन भनिबुद्धावन हित रूप यलि

सकल श्रवण विन्द्य हृद पदिसेवक वन्द्य  
 धीवृग्दावन वाड हंत पदिसेवक वन्द्य ॥  
 ध्यासनन्द-मद प्रीति हंत पदिसेवक वन्द्य ।  
 श्री राधावल्लभ मंत्र हंत पदिसेवक वन्द्य ॥  
 पदिय नित हित रग मों सेवक वन्द्य प्रेन ननि ।  
 सेवक वाणी की कृपा सेवक वन्द्य मंत्र-मुक्ति ॥ ८॥

॥ पद ॥

सेवक, सेवक वाणी धोली ।

रूप रंग रस मद में थाके कुननि-कुननि डोनी ॥  
 जाने पड़े मुने अब गाये उपमत प्रेम प्रमोली ।  
 रसिक भ्रुपुन्ध मुमिर हित चित में कपट कपाटनि लोली ॥

ॐ इति ॐ

अय-अय राधावल्लभ, गुरु हरिवश,

रंगीली राधावल्लभ, हितहरिवश ।

छवीली राधावल्लभ, प्यारीहरिवश,

रसीली राधावल्लभ, जीवन हरिवश ।

श्रीधुम्बावनरामोराधा बल्लभनृपति प्रसश ।

हित के बस जस रस उर धरिये, करिये श्रुति अथतल ॥१॥

बशीबट, यमुना तट, घोर समीर पुलिन मुखपुल्ल ।

बिहरत रंग रंगीली हित सों, मडल सेवाकुल्ल ॥२॥

ललिता विशाखा चपक चित्रा, सुङ्गविद्या रङ्गवेदी ।

इन्दुलेखा सुबेयी सयही, सखी गूथ हित-सेवी ॥३॥

श्रीवनचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीगोपीनाथ, श्रीमोहन ।

नाथ बिहु परिवार रंगीली, हित सों नित छवि जोहन ॥४॥

नरवाहन, ध्रुववास, ध्यास श्रीसेधक, नागरिदास ।

श्रीठल मोहन नवल छवीसे, हित-चरणम की आस ॥५॥

हरीदास माहरमस गोविंद, जमल भुवन सुजान ।

सरगसेम हरिवशदास परमानंद के हित प्रान ॥६॥

गगा, यमुना, करमठी, अथ भागमती ये धाई ।

हित के चरण शरण हूँ मैं, इन वपति-सर्पतिपाई ॥७॥

दासघतुरभुज, कहर स्वामी, अथ प्रयोध, कल्याण ।

स्वामी लाल, वमोवर, पुहुकर, सुन्दर हित उर मान ॥८॥

हरीदास तुलाधार और जसयत महामति नागर ।  
 रसिकदास, हरिकृष्ण बोऊ ये, प्रेम भक्ति के सागर ॥६॥  
 मोहन माधुरीदास, द्वारिकादाम परम अनुरागी ।  
 श्यामशाह तूमर फुल हित सों वपति में मति पागी ॥१०॥  
 श्रीहित-शरण भये अरु अरु हैं, फेरहु जे जन ह्वं हैं ।  
 प्रेम-भक्ति अरु भाव-चाव सों, घुन्दावन निधि पं हैं ॥११॥  
 रसिक-मटसी में या तन कों, नीके हग लगावौ ।  
 वपति यज्ञ गावौ हर्षावौ, हित सों रीझ रिभावौ ॥१२॥  
 देवन कों दुर्लभ नर-बेही, सो त सहजहि पाई ।  
 मन भाई निधि पाई सो पयो, जान-सूझ बिसराई ॥१३॥  
 एक अहता-भमता ये हैं, जग में अति दुखदाई ।  
 ये जय श्रीजी की और लग तय, होत परम सुखदाई ॥१४॥  
 मात-सात-सुत-दार देह में, मत अरुभं मति-मदा ।  
 हितबिशीरको ह्वं अफोर तू, सनि घुन्दावनघवा ॥१५॥

श्रीहित बट्टनासत्री महाराज वृत्त, हित रमिब  
 नामावनि समाप्त



## ❀ रतिक-नाम ध्वनि ❀

जय-जय राधावल्लभ, गुरु हरिवश,

रंगीली राधावल्लभ, हितहरिवश ।

ध्वनीली राधावल्लभ, प्यारीहरिवश,

रसीली राधावल्लभ, जोधम हरिवश ।

श्रीधृम्बावनरामीराधा धल्लभमूपति प्रसश ।

हित के बस जस रस उर धरिये, करिये श्रुति अथतश ॥१॥

बशीवट, यमुना तट, घोर समीर पुलिन सुलपुच्छ ।

बिहरत रग रंगीली हित सों, मडल सेवाकुच्छ ॥२॥

सलिला विशाखा चपक चित्रा, सुङ्गविद्या रङ्गदेवी ।

इन्दुलेखा सुदेशी सबही, सली मूष हित-सेवी ॥३॥

श्रीधनधद्र, श्रीकृष्णधद्र, श्रीगोपीनाथ, श्रीमोहन ।

नाब-बिबु परिवार रंगीली, हित सों नित छवि जोहन ॥४॥

नरबाहन, ध्रुवदास, ध्यास श्रीसेवक, नागरिवास ।

धीठस मोहन नवल छवीसे, हित-चरणन बी आस ॥५॥

हरीवास नाहरमल गोविंद, जमल भुवन सुनाम ।

सरगसेन हरियशवास परमानव के हित प्रान ॥६॥

गगा, यमुना, करमठी, अरु भागमती ये आई ।

हित के धरण-शरण हूँ क, इन दर्पित-सपतिपाई ॥७॥

वासचतुरभुज, कम्हर म्यामी, अरु प्रयोध, फत्याण ।

स्वामी लाल, बमोदर, पुढुकर, सुन्दर हित उर आन ॥८॥

हरीदास सुसाधार और जसवत महामति मार ।  
 रसिकदास, हरिकृष्ण बोक ये, प्रेम-भक्ति के सागर ॥६॥  
 मोहन भाग्युरीदास, द्वारिकादाम परम प्रनुरागी ।  
 श्यामगाह त्रमर कुस हित सों दपति में मति पागी ॥१७॥  
 श्रीहित-गरण भये अर अर है, फेरु धे रन ह्व है ।  
 प्रेम भक्ति अर भाव-भाव सों, वृन्दावन निधि पै है ॥१८॥  
 रमिक-भइसी में या तन की, नीचे दग नग्यो ।  
 दपति-यग गावो हर्षावी, हित सों रोन् गिन्दायो ॥१९॥  
 बेयन कों बुलन मर-देही, मो तें मरुदछे पई ।  
 मन भाई निधि पाई सो बयो, जान-बुन् बिप्रराई ॥२०॥  
 एक अहता-ममता ये है, अग में अति दुखदई ।  
 ये अद श्रीश्री की ओर सगें तब, होत पग्न मुददई ॥२१॥  
 मात-सात-मुन-दार वेह में, मत्र अर्द्ध मरुददई ।  
 हितशिओरषो ह्वं अओर न, मधि बुन्द इन्द ॥२२॥

श्रीहित पन्नामयी महागर ह्व, अर अर

गमावनि अर



